अंक-2, मार्च 2023

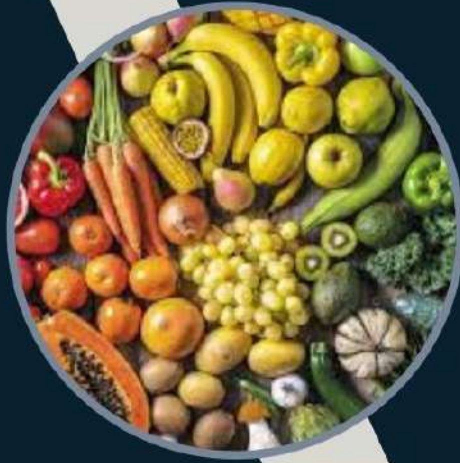

कृषि रसायन दिग्दर्शिका

कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान
रसायन एवं पेट्रो -रसायन विभाग के अंतर्गत स्वायत संस्थान
रसायन एवं उर्वरक मंत्रालय,भारत सरकार
सेक्टर-20, उद्योग विहार,
गुरुग्राम -122016, हरियाणा

प्राक्कथन

कृषि में पुरानी पीढ़ी के कृषि रसायनों का प्रयोग किए जाने से स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे कीट नियंत्रण कम हो पाता है, साथ ही उत्पादन पर भी इसके दुष्प्रभाव होते हैं।

कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान (आईपीएफटी) रसायन और पेट्रोरसायन विभाग, रसायन और उर्वरक मंत्रालय, भारत सरकार के तहत एक स्वायत्त संस्थान है। यह संस्थान पर्यावरण के अनुकूल, सुरक्षित, कुशल, लागत प्रभावी, कीटनाशक सूत्रीकरण, कीटनाशक गुणवत्ता नियंत्रण,प्रभावकारिता फाइटोटाक्सीसिटी और फसलों के संरक्षण एजेंटों के अवशेष डाटा उत्पादन पर कार्य कर रहा है। परंपरागत रसायनों के नुकसान को कम करने के लिए प्रयोक्ताओं एवं पर्यावरण की सुरक्षा हेतु आईपीएफटी नई पीढ़ी के कीटनाशक फॉर्मूलेशन और जैव वानस्पतिक सूत्रीकरण विकसित करने में सक्रिय रूप से संलग्न है। आईपीएफटी ने अभी तक ८० से भी अधिक प्रौद्योगिकियों को विकसित किया है। अधिकांश प्रौद्योगिकियों को विभिन्न कीटनाशक उद्योगों के उनके व्यवसायिक उपयोग हेतु हस्तांतरित किया है। नई पीढ़ी के फॉर्मूलेशन पर्याप्त मात्रा में जैव- प्रभावकारिता उत्पन्न करते हैं । इन फॉर्मुलेशनों में सॉल्वेंट या तो होता ही नहीं या बहुत कम होता है । इन फॉर्मूलेशन द्वारा त्वचा विषाक्तता, ज्वलनशीलता, पादपविषाक्तता और भोजन उत्पादों में कीटनाशक अवशेष के खतरों को न्यूनत्तम किया जाता है। ऐसे अनेकानेक उद्देश्यों व परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आईपीएफटी अनुसंधान एवं विकास कार्यों में संलग्न है। यह देश में कीटनाशक सूत्रीकरण का एक अग्रणी संस्थान है और परिष्कृत विश्लेषणात्मक उपकरणों सहित अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं से पूर्णरूपेण सुसज्जित है।

यह संस्थान विभिन्न फसलों और पर्यावरण पर फसल सुरक्षा एजेंटों के अवशिष्ट के विश्लेषण के लिए उद्योगों को सहायता प्रदान करता है। विश्लेषणात्मक लैब कीटनाशकों तथा विभिन्न भोज्य पदार्थों में कीटनाशक अवशेषों इत्यादि के परीक्षण के लिए एनएबीएल तथा जी.एल.पी. द्वारा मान्यता प्राप्त है। संस्थान के पास जैव- प्रभावकारिता, पादप विषाक्तता और कीटनाशक अवशेषों पर कृषि परीक्षणों और प्रयोगों हेतु विस्तृत कृषि क्षेत्र उपलब्ध है। विभिन्न राज्यों और राष्ट्रीय एजेंसियों के साथ अवशेष परियोजनाओं पर अनुसंधान कार्यों में भी संलग्न है।

इसी क्रम में "**कृषि रसायन दिग्दर्शिका**" नामक यह पत्रिका प्रकाशित की गई है जिसमें सभी हित धारकों, वैज्ञानिकों, किसानों, विद्यार्थियों इत्यादि में कृषि रसायनों के प्रति जागरूकता बढ़ाने और परस्पर परिचर्चा का एक प्लेटफार्म उपलब्ध हो सके, तदनुसार इस पत्रिका के द्वितीय अंक को प्रस्तुत करते हुए हमें गर्व की अनुभूति हो रही है। मैं आशा करता हूँ कि इस अंक का सभी वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों, किसानों एवं अन्य सभी को फायदा होगा। यह भी अनुरोध है कि इस पत्रिका के संबंध में आप अपने सुझाव और विचार दे सकते हैं ताकि भविष्य में इस पत्रिका को और अधिक उपयोगी बनाया जा सके, धन्यवाद।

(डॉ. अमरीश अग्रवाल)

विशेषज्ञ (सूत्रीकरण) एवं सदस्य सचिव, राजभाषा समिति,आईपीएफटी

संपादक-

श्री दीपक मिश्रा

सह संपादक-

डॉ. ललितेश कुमार ठाकुर

डॉ. अमरीश अग्रवाल

श्री सुदीप मिश्रा,वैज्ञानिक

श्री राज सिंह यादव

संकलन सहायता-

श्रीअनुज कौशल

श्री आशीष मैनाली

प्रकाशकः-

कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान

रसायन और पेट्रो रसायन विभाग,रसायन और उर्वरक मंत्रालय,भारत सरकार

सेक्टर- 20, उद्योग विहार, गुरुग्राम -122016 (हरियाणा)

दूरभाषः0124-2348488,2348487,2341844

ई- मेलःdirector@ipft.gov.in,ipft@rediffmail.com

वेबसाइटः www.ipft.gov.in

© 2023, कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशक का इससे सहमत होना अनिवार्य नहीं है अर्थात इसके लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

विषय सूची

क्र.सं.	विषय नाम	पृष्ठ सं.
1.	पान की बेल (पाइपर बीटल): किसानों की आय बढ़ाने के लिए बड़ी व्यवसायिक क्षमता वाली कम आंकी गई एक फसल	01-07
2.	फॉल आर्मीवर्म,स्पोडोप्टेरा (जेई स्मिथ) के लिए जैवपारिस्थितिकी और प्रबंधन रणनीतियां	08-19
3.	प्रदूषित मिट्टी के प्रबंधन के लिए समाधान	20-25
4.	स्मार्ट फार्मिंग में जीवाणु खाद की भूमिका	26-29
5.	फैमिली नेट वेसल कंपोस्ट तकनीकः घरेलू अपशिष्ट से मूल्यवान खाद	30-32
6.	नीमः जैविक खेती में एक महत्वपूर्ण तत्व	33-37
7.	पशु पालन की आदिम संस्कृति	38-42
8.	मानव- स्वास्थ्य और पर्यावरण पर कीटनाशकों की विषाक्तताः हरियाणा के संदर्भ में	43-48
9.	मधुमक्खी की जातियां	49-50
10.	समय की मांग है कीटनाशकों का संतुलित इस्तेमाल	51-53
11.	कृषि अपशिष्ट व उनका प्रबंधन	54-55
12.	सोयाबीन	56-57
13.	जलवायु परिवर्तन खेती के लिए बड़ी चुनौती	58-60

पान की बेल (पाइपर बीटल): किसानों की आय बढ़ाने के लिए बड़ी व्यावसायिक क्षमता वाली कम आंकी गई एक फसल

अर्का गंगोपाध्याय, दीपक कुमार हाजरा, गौतम मंडल, बिजन कुमार दास

1. कृषि रसायन विभाग, बिधान चंद्र कृषि विश्वविद्यालय, कल्याणी, नादिया -741235, पश्चिम बंगाल, भारत

2. कीटनाशक अवशेषों पर अखिल भारतीय नेटवर्क परियोजना, कृषि रसायन विभाग, बिधान चंद्र कृषि विश्वविद्यालय, कल्याणी, नादिया, पश्चिम बंगाल -741235, भारत

3. एमएपी और पान पर एआईसीआरपी, प्लांट पैथोलॉजी विभाग, अनुसंधान निदेशालय, बिधान चंद्र कृषि विश्वविद्यालय, कल्याणी -741235, नदिया, पश्चिम बंगाल, भारत।

परिचय

बीटल, जिसे भारत में पान के नाम से भी जाना जाता है, यह एक प्राचीन इतिहास वाली मूल्यवान नकदी फसल है। पान के पत्ते को भारत में एक पवित्र पौधा माना जाता है और यह सांस्कृतिक रीति-रिवाजों से भी जुड़ा हुआ है। सामान्य तौर पर, एशिया और दुनिया भर में कुछ एशियाई प्रवासियों द्वारा सुपारी (एरेका कत्था) के साथ ताजी कच्ची पत्तियों का सेवन किया जाता है। इसका उपयोग अपच, पेट की परेशानी, दस्त और पेट फूलने के साथ-साथ घाव, मोच और चोट से सूजन, सांस की समस्या, कब्ज, फोड़े और मसूड़ों के विकारों को ठीक करने के लिए किया जाता है। यह ज्यादातर आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, असम, बिहार और पश्चिम बंगाल में उगाया जाता है। कहा जाता है कि पान की बेल की उत्पत्ति भारत, श्रीलंका, मलेशिया और इंडोनेशिया में हुई थी। भारत में 50000 हेक्टेयर से अधिक भूमि में लगाई जाती है, जिसमें पश्चिम बंगाल सबसे महत्वपूर्ण राज्य है और पान की छोटी जोत करने वाले भी प्रमुख किसान हो गए हैं। दक्षिण 24 परगना, मिदनापुर, हावड़ा, हुगली और नादिया पश्चिम बंगाल के उल्लेखनीय

जिले हैं। 2021-22 में, भारत ने 6.17 मिलियन डॉलर में 6517.26 मीट्रिक टन पान के पत्तों का निर्यात किया। पान उद्योग भारत में लगभग 20 मिलियन लोगों को रोजगार देता है, जिनमें से 5 मिलियन अकेले पश्चिम बंगाल में काम करते हैं।

वनस्पति विज्ञान:

पान बेल का वैज्ञानिक नाम piper betel है , जो पीपरेसी परिवार का एक सदस्य है। यह एक द्वैध बारहमासी पौधा है, जिसका अर्थ है कि नर और मादा पौधे अलग-अलग मौजूद होते हैं। इसकी दिल के आकार की, गहरी हरी पत्तियाँ इसे सौंदर्य और व्यावसायिक महत्व दोनों के साथ एक महत्वपूर्ण बारहमासी पर्वतारोही बागवानी फसल बनाती हैं। पान की बेल छाया में अच्छी तरह से बढ़ती है और इसकी सुगंधित, दिल के आकार की सदाबहार पत्तियों और सफेद कैटकिंस से अलग होती है। यह सुंदर, चमकदार पत्तियों वाला चढ़ाई वाला पौधा भी है।

खेती करना जलवायु संबंधी आवश्यकताएं:

पान बेल के विकास के लिए एक उष्णकटिबंधीय तापमान, बहुत/ अधिक बारिश और छाया आदर्श परिस्थितियां हैं। वार्षिक वर्षा 200 से 450 सेमी के बीच होनी चाहिए। यह पौधा 10 से 40 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान को सहन कर सकता है। हालांकि यह धूप का आनंद लेता है, यह शुष्क क्षेत्रों की तुलना में मध्यम से भारी वर्षा वाले स्थानों में बेहतर पत्ते पैदा करता है। अच्छी खेती के लिए छाया और सिंचाई महत्वपूर्ण हैं, जबकि गर्म, शुष्क हवाएँ वृद्धि को नुकसान पहुँचा सकती हैं।

बुवाई का मौसम: विभिन्न राज्यों में बुवाई का मौसम इस प्रकार है -

असम - अप्रैल-मई और अगस्त-सितंबर

आंध्र प्रदेश - सितंबर-अक्टूबर

बिहार - जून-जुलाई, सितंबर और मई-जून

कर्नाटक- जुलाई-अगस्त

महाराष्ट्र- जुलाई-अगस्त और अक्टूबर-नवंबर

मध्य प्रदेश- जनवरी-मार्च और सितंबर-नवंबर

ओडिशा- मई-जून और सितंबर-नवंबर

पश्चिम बंगाल- जून-जुलाई और सितंबर-अक्टूबर

मिट्टी की आवश्यकताएं: उच्च कार्बनिक पदार्थ और एक मजबूत जल निकासी प्रणाली वाली मिट्टी के लिए पान बेल विकास सबसे उपयुक्त है। हालाँकि, इसकी खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, जिसमें भारी मिट्टी वाली दोमट और रेतीली दोमट शामिल हैं। यह नमकीन या क्षारीय वातावरण के प्रति सहिष्णु नहीं है।

नम गर्मी के महीनों (मार्च-मई) के दौरान मृदा जनित संक्रमणों को खत्म करने के लिए, मिट्टी के ऊपर पॉलीथीन की चादर बिछाई जाती है। नए पौधों में मृदा सूत्रकृमि की आबादी को कम करने के लिए कार्बोफ्यूरान 3जी उपचार 1.5 किग्रा/हेक्टेयर या नीम की खली (0.5 टन/हेक्टेयर) और कार्बोफ्यूरान (0.75 किग्रा/हेक्टेयर) के संयोजन की सलाह दी जाती है। लेकिन यह देखते हुए कि पत्ती की कटाई से पहले 65-70 दिन की देरी होनी चाहिए, पहले से स्थापित बगीचों में कार्बोफ्यूरान का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

खेती प्रणाली: भारत में पान बेल दो विधियों द्वारा उगाई जाती हैं: सहायक पौधों का उपयोग करने वाली एक खुली प्रणाली और बोरोजा के रूप में जानी जाने वाली कृत्रिम संरचनाओं का उपयोग करके बंद प्रणाली। Borojas, बांस या जूट की छड़ियों से बने आयताकार ढांचे, कृत्रिम समर्थन और छाया के लिए उपयोग किए जाते हैं। वे सिंचाई के स्रोत के पास ढलान वाली भूमि पर बनाए जाते हैं और उचित जल निकासी के लिए सभी दिशाओं में ढलान होना चाहिए।

बोरोजा 2-2.5 मीटर लंबे होते हैं और नारियल के पत्तों या पुआल जैसी सामग्री का उपयोग करके छप्पर से ढके होते हैं।

महत्वपूर्ण किस्में: पान के पत्ते के आकार, प्रकार, भंगुरता और स्वाद के आधार पर पान की बेल को तीखी और गैर-तीखी किस्मों में वर्गीकृत किया जाता है।

आंध्र प्रदेश- करापाकु, चेनोर, तेलाकु, बांग्ला और कल्ली पट्टी

असम- असम पट्टी, अवनी पान, बंगला और खासी पान।

बिहार- देसी पान, कलकत्ता, पाटन, मघई और बंगला

कर्नाटक- करियाले, मैसूरले और अंबाडियाले

ओडिशा- गोदी बांग्ला, नोवा कटक, सांची और बिरकोली

मध्य प्रदेश- देसी बांग्ला, कलकत्ता और देस्वरी

महाराष्ट्र- कालीपट्टी, कपूरी और बंगला (रामटेक)

पश्चिम बंगाल- बांग्ला, सांची, मीठा, काली बांग्ला और सिमुराली बांग्ला।

संचरण/प्रसार: 3-5 नोड्स के साथ स्टेम कटिंग का उपयोग प्रसार के लिए किया जाता है, जिसमें 2-3 नोड्स जमीन में दबे होते हैं। आप एक सिंगल नोड भी लगा सकते हैं जिसे मदर लीफ से काटा गया है। सरल जड़ों के लिए, लताओं के शीर्ष को 30- से 45-सेमी-लंबी कटिंग में काटा जाता है जिसे सेट कहा जाता है। प्रति हेक्टेयर, 100,000 पेड़ों/कलमों की आवश्यकता होती है। बोरोजा (बंद) व्यवस्था में 100,000-120,000 कटिंग पर्याप्त हैं,जबकि खुली खेती प्रणाली में प्रति हेक्टेयर 40,000-75,000 कलमों का उपयोग किया जाता है।

सिंचाई: पान की बेल हेतु मिट्टी बहुत अधिक नमी की मांग करती है, इस प्रकार मौसम के आधार पर, नियमित, हल्का पानी देना चाहिए। अतिरिक्त पानी निकालने के लिए, पर्याप्त जल

निकासी महत्वपूर्ण है। सिंचाई आवश्यकता के आधार पर करनी चाहिए। पानी शुद्ध होना चाहिए और कीटाणुओं से मुक्त होना चाहिए।

खाद: पान की लताओं को प्रत्येक वर्ष प्रति एकड़ 150 किलोग्राम नाइट्रोजन (एन) की आवश्यकता होती है, जिसमें से 75 किलोग्राम नीम की खली से और 75 किलोग्राम यूरिया से आना चाहिए। शुरुआत में बेसल ड्रेसिंग के रूप में 37.5 किलोग्राम नाइट्रोजन डालें, और शेष 112.5 किलोग्राम नाइट्रोजन तीन अलग-अलग अनुप्रयोगों में बेलों को हटाने के 15 दिनों के बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में और एक बार 40-45 दिनों के अंतराल पर डालें। सुपरफास्फेट का उपयोग करते हुए 30 किग्रा/हे./वर्ष म्यूरेट ऑफ पोटाश और 100 किग्रा/हे./वर्ष फॉस्फोरस (पी2ओ5) की आधारभूत खुराक लागू करें।

कटाई: यह बाजार की परिस्थितियों और बेल की वृद्धि पर आधारित है। जब कटाई शुरू होती है, तो यह लगभग पूरे दिन चलती है। प्रति हेक्टेयर 75 से 100 लाख पत्ते सालाना काटा जा सकता है।

कटाई के बाद का प्रबंधन:

तोड़ी गई पत्तियों को साफ किया जाता है, ग्रेड किया जाता है, फिर आकार, रंग, परिपक्वता और बनावट के आधार पर फिर से साफ किया जाता है। डंठल के एक हिस्से को हटाने और क्षतिग्रस्त पत्तियों को हटाने के बाद, उन्हें पैक किया जाता है। अधिकांशतः बांस की टोकरियों का उपयोग पैकेजिंग के लिए किया जाता है और अंदर की परत अक्सर पुआल, ताजे या सूखे केले के पत्तों, नम कपड़े आदि से बनी होती है। पान के पत्तों को चबाने का सबसे अच्छा समय तब होता है जब वे ताजा और कच्चे होते हैं। हालाँकि, कुछ स्थानों पर, विरंजन या उपचार तकनीकों का उपयोग पत्तियों के लिए किया जाता है। इस तरह के पत्तों की बहुत मांग होती है और बाजार

में ऊंचे दामों पर बिकते हैं। 60-70°C पर 6 से 8 घंटे तक हीट ट्रीटमेंट करने से ब्लीचिंग हो जाती है।

कीट प्रबंधन के तरीके:

पान की बेल की पत्तियाँ, जो इसकी आय का मुख्य स्रोत हैं, किसी भी बीमारी या कीट से मुक्त होनी चाहिए। सोलराइजेशन कृषि में मृदा जनित रोगों के प्रबंधन के लिए उपयोग की जाने वाली प्रक्रिया है। तेज गर्मी के दौरान एक महीने के लिए, अच्छी तरह से जुताई वाले क्षेत्र को एक साफ पॉलीथीन शीट से ढक दिया जाता है, जिसे बाद में सप्ताह में एक बार पानी छिड़कने के लिए हटा दिया जाता है। एक महीने के बाद पानी (1:50) में पतला 40% फॉर्मेलिन घोल से उपचारित करने के बाद मिट्टी को अतिरिक्त 5 दिनों के लिए ढक दिया जाता है। फॉर्मेलिन उपचार के बाद एक माह नए रोपण के लिए अधिकतम समय है।

5% नीम के बीज के अर्क (50 ग्राम + 1 लीटर पानी) या नीम के तेल को 5 मिली प्रति लीटर की दर से छिड़काव करने की सिफारिश कीटों, विशेष रूप से सफेद- और काली मक्खियों और मिलीबग के लिए की जाती है। इमल्सीफायर जैसे ट्विन 80, सैंडोविट और टीपोल एजी @ 1 मिली/ली या 5 ग्राम साबुन पाउडर को नीम के बीज के अर्क या नीम के तेल के साथ 15 दिनों के अंतराल पर इस्तेमाल किया जाना चाहिए। अत्यधिक संकट काल के दौरान मैलाथियान 50 ईसी और डाइक्लोरवोस 76% ईसी (0.05%) का उपयोग। माइट प्रबंधन के लिए, वेटेबल सल्फर 0.15%, डाइकोफोल 2.5 मिली/ली, या डायफेंथियूरॉन 50 डब्ल्यूपी (1 ग्रा/ली) का 10 दिनों के अंतराल पर उपयोग करें। खड़ी फसलों में नीम की खली 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से सूत्रकृमि नियंत्रण हेतु सुझाई गई है। 31/01/2023 को सीआईबी और आरसी के अनुसार पान की बेल के कीटों के खिलाफ किसी कीटनाशक का उल्लेख नहीं किया गया है। स्वच्छ कृषि औजारों का उपयोग करना, सूक्ष्मजीवविज्ञानी संदूषण से मुक्त सिंचाई के पानी का उपयोग करना और बोरोज

में काम करने वाले कर्मचारियों की व्यक्तिगत सफाई को बनाए रखना ,उचित स्वच्छता मानकों को बनाए रखने के प्रमुख उदाहरण है। समान बोर्डो मिश्रण (1%) के दो अनुप्रयोग किए गए: एक मानसून पूर्व मौसम के दौरान और दूसरा दो महीने बाद। एक महीने के बाद, एक हेक्टेयर के लिए 500 किलोग्राम खली में टूटे हुए ज्वार या गेहूं में बायोकंट्रोल एजेंट कल्चर के 5 किलोग्राम की दर से ट्राइकोडर्मा हार्ज़ियानम या विराइड का प्रयोग करें।

संदर्भ:

सामंतरे, एस., फुरईलत्पम, ए., बिशोई, ए. के., गीता, के. ए., और मैती, एस (2012)। पान की बेल (पाइपर बेटल एल.) में लिंग-विशिष्ट डीएनए मार्करों की पहचान। जेनेटिक रिसोर्सेज एंड क्रॉप इवोल्यूशन, 59(5), 645-653।

जेन, एन.एस., देशमुख, ए.पी., और amp; जोशी, एम.एस. (2014)। पान के पौधे पर विभिन्न रोगों के अध्ययन की समीक्षा एवं नियंत्रण के उपाय। इंट जे एपल इनोवेशन इंग्लैंड प्रबंधन, 3(3), 560-563।

जना एच (2016)। पान की खेती: भारतीय परिप्रेक्ष्य में महत्व। राष्ट्रीय कृषि, 11(1), 58-61

https://apeda.gov.in/apedawebsite/SubHead_Products/ Betel_Leaves_Nuts.htm

फाल आर्मीवर्म, *स्पोडोप्टेरा फ्रूजीपरडा* (जेई स्मिथ) के लिए जैवपारिस्थितिकी और प्रबंधन रणनीतियाँ

सुबी एस. बी., लक्ष्मी पी. सौजन्या, एस. एल. जाट, बी. एस. जाट, भारत भूषण एवं जे. सी. शेखर

भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, पंजाब– 141004, भारत

संवादी लेखक का ईमेल :– bahadursinghnanda@gmail.com

प्रस्तावना

भारत में मक्का (*Zea mays* L.) अधिकतम वृद्धि दर के साथ क्षेत्रफल और उत्पादन दोनों ही मापदंडों से खाद्यान्न फसलों में तीसरा सर्वाधिक उत्पादित अनाज है। यह मुख्य रूप से मानव, पौल्ट्री एवं पशु आहार के साथ विभिन्न औद्योगिक प्रयोजनों के लिए उपयोग में लाया जाता है। संकर किस्मों को कम अपनाना और मक्का आधारित किसानों को नीतिगत समर्थन का अभाव जैसे सामाजिक–आर्थिक कारकों के अतिरिक्त, जैविक और अजैविक तनाव भी मक्का में उपज लाभ की पूर्ण क्षमता को प्राप्त करने में बड़ी बाधा है। विश्व भर में 140 से अधिक कीट प्रजातियां मक्का की फसल को बुआई से लेकर कटाई तक विभिन्न हदों तकं हानि पहुंचाती हैं और वर्तमान में फाल आर्मीवर्म (FĂ) *स्पोडोप्टेरा फ्रूजीपरडा* एषिया और अफ्रीका में मक्का की फसल के लिए प्रमुख जैविक कारक है। फाल आर्मीवर्म मूलतः अमेरिका का एक विनाशकारी कीट है और वर्ष 1797 से इसे संयुक्त राज्य अमेरिका में एक नाषीजीव के रूप में जाना जाता है जिसके प्रबंधन के षुरूआती दस्तावेज भी उपलब्ध है। अमेरिका के बाहर फाल आर्मीवर्म वर्श 2016 में पहली बार अफ्रीका में देखा गया और 2022 में यह ऑस्ट्रेलिया तक पहुंच गया।

भारत में फॉल आर्मीवर्म का सीमा पार संचलन बनाम पारिस्थितिक कारक

भारत में फाल आर्मीवर्म का प्रकोप पहली बार 18 मई, 2018 को कर्नाटक राज्य के षिवामोग्गा जिले में देखा गया। इसके बाद फाल आर्मीवर्म धीर–धीरे विभिन्न राज्यों में फैलता चला गया। जुलाई, 2018 तक इस कीट के तमिलनाडु, तेलंगाना तथा आंध्र प्रदेष के हिस्सों में फैल जाने की जानकारी मिली। अगस्त और सितम्बर, 2018 तक यह महाराश्ट्र, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेष तक फैल गया और सितम्बर तक यह कीट गुजरात और केरल में भी पाया गया। अक्तूबर, 2018 में बिहार, पष्चिम बंगाल तथा राजस्थान में इसके फैल जाने की सूचना मिली। मार्च, 2019 में यह त्रिपुरा और मिजोरम के उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्रों में और अप्रैल, 2019 में यह नागालैंड में भी मक्का फसल को प्रभावित करते हुए पाया गया। मई, 2019 तक मणिपुर, मेघालय, अरूणाचल प्रदेष, और सिक्किम में इसके फसल संक्रमण को दर्ज किया गया। असम, झारखंड और उत्तर प्रदेष ने जून, 2019 में इसके फैलने की सूचना दी। उत्तराखंड और दिल्ली में जुलाइ, 2019 तक और हरियाणा तथा पंजाब में अगस्त, 2020 तक फाल आर्मीवर्म के फैलने की सूचना मिली।

तथापि, हमारी चुस्त निगरानी और वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार जुलाई, 2021 में फाल आर्मीवर्म के हिमाचल प्रदेष और जम्मू एवं कष्मीर की पहाड़ियों तक पहुचने की सूचना महत्वपूर्ण रही।

भारत में फाल आर्मीवर्म की परपोशी वरीयता और आर्थिक क्षति

फाल आर्मीवर्म एक बहुभक्षी नाषीजीव है जिसकी 76 पादप परिवार कुलजातियों से संबंधित कुल 353 फाल आर्मीवर्म लार्वा परपोशी पादप प्रजातियों का प्रलेखीकरण किया है, जो कि अधिकतम पोएसी (106 टैक्सा) इसके बाद एस्टेरसिया (31 टैक्सा) और फैबेसी (31 टैक्सा) से संबंधित है। हालांकि, यह मुख्य रूप से घासों का नाषीजीव है, जिसमें मक्का, चावल, ज्वार, कदन्न, गेहूं, जई, चारा एवं चरागाह घास आदि आर्थिक दृश्टि से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। परपोशी पादप में होने वाली क्षति के विस्तार के लिए फाल आर्मीवर्म के दो प्रभेदों अर्थात् मक्का (कॉर्न) प्रभेद ''सी'' जो मुख्य रूप से मक्का, ज्वार और कपास से आहार लेता है और चावल प्रभेद ''आर'' चावल और ट्रफ घास को वरीयता देता है को जिम्मेदार माना जाता है। तथापि, अफ्रीका और भारत में फाल आर्मीवर्म आबादी का आनुवंषिक मेकअप मुख्य रूप से ट्राइओसफॉस्फेट आइसोमेरेज़ (*Tpi*) द्वारा ''सी'' प्रकार का, परन्तु साइटोक्रोम ऑक्सीडेर्ज (COI) द्वारा ''आर'' प्रकार का –जो सामान्य छोटी संस्थापक आबादी से उत्पन्न होने वाले अंतर–प्रभेद संकरों का सुदृढ़ संकेत है। फाल आर्मीवर्म सबसे अधिक मक्का और ज्वार फसल को नुकसान पहुंचाता है। भारत और भारतीय उप–महाद्वीप में फाल आर्मीवर्म भी मक्का की 100 प्रतिषत तक पादप आबादी को संक्रमित कर सकता हैं, इसके बाद ज्वार और अन्य कदन्नों को प्रभावित कर सकता है। भारत में, भाकृअनुप–भारतीय कदन्न अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद में वर्श 2018 के वर्शा के मौसम और 2018–19 के वर्शा के पष्चात ज्वार, बाजरा, बार्नयार्ड और रागी के खेतों में फाल आर्मीवर्म के होने की संभावना की बारीकी से निगरानी की गई। वर्श 2018 के वर्शा के मौसम के दौरान नाषीजीव कहीं–कहीं पाया गया जिसके द्वारा 1–2ः तक क्षति देखी गई है। हालांकि, वर्शा–पष्चात बोई गई ज्वार में अक्तूबर–नवम्बर, 2018 के दौरान मध्यम से गंभीर रूप में क्षति हुई। ज्वार और बाजरे की प्रत्येक गौब (ॅवतस) में औसतन 1–2 लार्वा पाए गए। गौब की क्षति के आधार पर कदन्नों में ज्वार सर्वाधिक पसंदीदा परपोशी (60.1ः), इसके बाद बाजरा (41.4ः), बार्नयार्ड मिल्लेट (22.9ः) और रागी (10.2ः) पाए गए हैं। आंध्र प्रदेष में ज्वार और बाजरे में फाल आर्मीवर्म की क्रमषः 70 और 30 प्रतिषत संक्रमणता दर्ज की गई। भारत के मक्का उगाने वाले इलाकों में गन्ने और चावल की फसल को फाल आर्मीवर्म से संक्रमित होने की रिपोर्ट मिली, तथापि यह संक्रमण निषानों के रूप में में देखा गया और अभी तक किसी आर्थिक हानि की सूचना नहीं मिली है। भाकृअप–केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान द्वारा दिनांक 26 सितम्बर, 2019 को जारी की गई एक सलाह सुचना के अनुसार अनुसार महाराश्ट्र में मक्का की कटाई के पष्चात आस–पास के भू–खंडों में कपास की फसल में भी फाल आर्मीवर्म पाया गया है। लेकिन, अभी तक किसानों के खेतों से ऐसी कोई

सूचना नहीं मिली है। अफ्रीका में किसी भी नियंत्रण—उपाय के अभाव में फाल आर्मीवर्म के कारण वार्शिक मक्का उत्पादन में 21ः—53ः की हानि होने का पूर्वानुमान लगाया गया है। हालांकि भारत में, देषभर में किए गए गहन कार्यक्रमों और समय पर अपनाएं गए प्रबंधन उपायों से मक्का फसल को नुकसान से बचाया गया जो भारत सरकार के आंकड़ा अनुसार, वर्श 2018—2019 के दौरान 27.72 मीट्रिक टन से वर्श 2022 के दौरान 31.65 मीट्रिक टन उत्पादन और उत्पादकता में हुई वृद्धि से परिलक्षित होता है।

फॉल आर्मीवॉर्म की पहचान

फाल आर्मीवर्म के लार्वा जैसे—जैसे बढ़ते हैं, वे हरे, जैतूनी, टैन और भूरे रंगों में दिखाई देने लगते हैं। इस कीट को इसकी पूंछ के सिरे से किसी भी अन्य आर्मीवॉर्म प्रजातियों से अलग रूप में आसानी से पहचाना जा सकता है, जहां इसके उदर खंड 8 पर चौकोर पैटर्न में व्यवस्थित चार बड़े काले धब्बे होते हैं (चित्र 1 ं)। इसके अतिरिक्त, खंड 9, अन्तिम उदर खंड (चित्र 1 इ) पर ट्रैपेजॉइड पैटर्न में व्यवस्थित चार बड़े काले धब्बे होते हैं। सिर पर आंखों के बीच अंग्रेजी भाषा के उलटे वाई (ल)—आकार की एक सफेद रंग की सरंचना बनी होती है (चित्र 1 ब) और इसकी पीठ के नीचे तीन क्रीमी पीली या मटमैली रेखाएं होती हैं (चित्र 1 क म और ि)। फाल आर्मीवर्म के वयस्कों की पहचान, नर कीट के दो विषिश्ट चिह्नों अर्थात् केन्द्र की ओर हल्के पीले रंग का धब्बा (चित्र 2 ।) और अग्रपंख के षीर्श किनारे पर एक सफेद धब्बा (चित्र 2 ंइ)द्वारा की जाती है। मादा कीट भूरे— स्लेटी रंग की होती है, जिसके आगे के पंखों में कोई स्पश्ट निषान नहीं होता है (चित्र 2 ठ)।

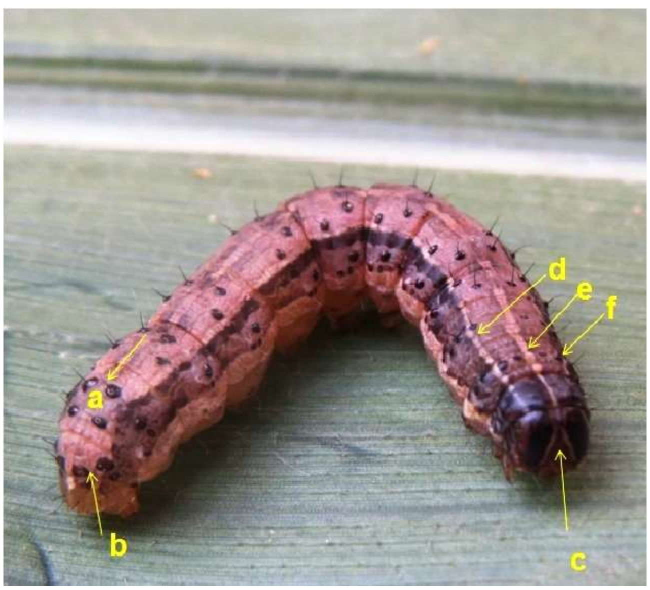

चित्र 1. फॉल आर्मीवर्म लार्वा विषिश्ट पहचान चिह्नों के साथ, जैसे उदर खंड 8 () पर चौकोर व्यवस्थित चार बड़े धब्बे और उदर खंड 9 (इ) पर चतुर्भुज (ट्रेपेजॉइड), सिर पर सफेद वाई–आकार की सरंचना (ब) और पीठ पर तीन प्रमुख रेखाएं (क म) हैं।

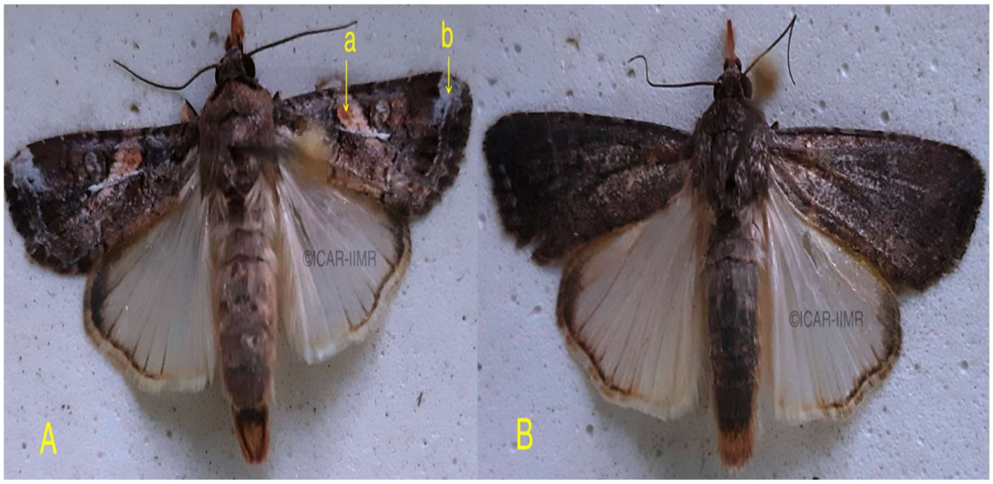

चित्र 2. फॉल आर्मीवर्म नर कीट (।) में पंख के षीर्श
किनारे पर हल्के पीले रंग का धब्बा () और सफेद पैच (इ) होता है। मादा (ठ) में ये हल्के चिह्नों के साथ धुंधले रूप में दिखाई देते हैं।

फॉल आर्मीवर्म का जीवन चक्र

मादा कीट एकल या कई समूहों में, बालो से ढ़के 1500 से अधिक अंडे देती है (चित्र 3 ̇)। इसकी उश्मायन अवधि 3 से 6 दिनों तक होती है। लार्वा 14 से 18 दिनों की अपनी वृद्धि में इंस्टार्स (चित्र 4 पहली से छठी) नामक छह चरणों से गुजरता हुआ प्यूपा में तबदील हो जाता है। सामान्यत इस कीट का प्यूपा लाल भूरे रंग का होता है (चित्र 3 सी) और यह वयस्क कीट में परिवर्तित होने के लिए 7 से 8 दिन लेता है (चित्र 3 क)। फॉल आर्मीवर्म का वयस्क कीट 4 से 6 दिनों तक जीवित रह सकता है। इस कीट का कुल जीवन–चक्र 29 से 37 दिन (चित्र 3) का होता हैं, जैसा कि भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, शीतकालीन नर्सरी केंद्र, हैदराबाद में प्राकृतिक पालन परिस्थितियों के अंतर्गत (26.31 डिग्री सेल्सियस तापमान और 50–65 : सापेक्ष आर्द्रता पर) अगस्त–सितम्बर, 2018 से जनवरी–फरवरी, 2019 के तहत देखा गया है। हालांकि 29 दिनों से कम और दीर्घायु वयस्क के 10 दिनों से अधिक के जीवन चक्र को 28̊1 डिग्री सेल्सियसय 70̊3 : सापेक्षिक आर्द्रता 12रू12 एलःडी चक्र पर नियंत्रित परिस्थितियों के तहत देखा जा सकता है।

फाल आर्मीवॉर्म का जीवन चक्र (29–37 दिन)

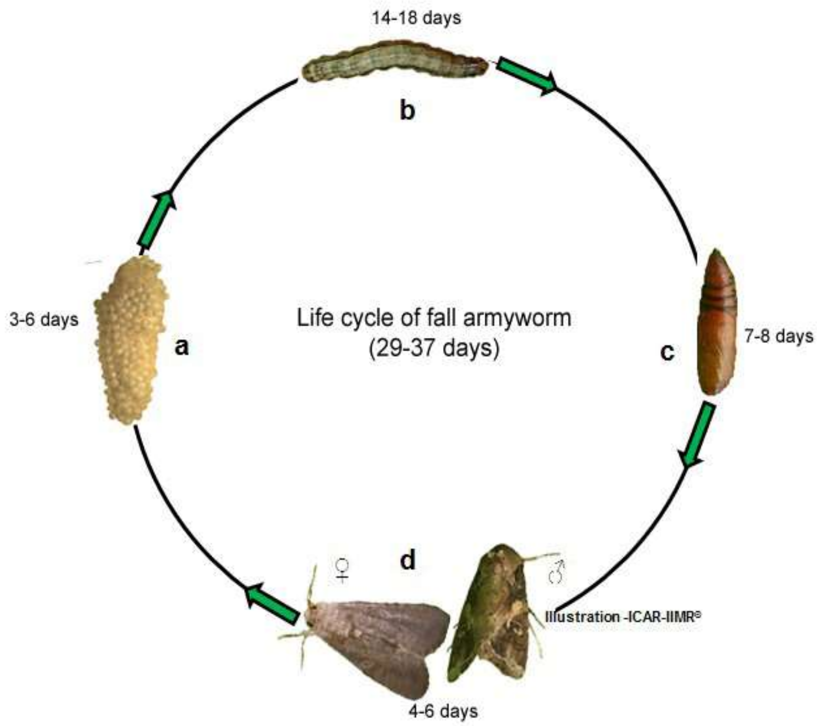

चित्र 3. फॉल आर्मीवॉर्म का जीवन–चक्र ं ण अंडा समूह, इण लार्वा बण व्यूपा कण वयस्क मादा ;♀द्ध और

नर;♂द्ध कीट।

चित्र 4. फॉल आर्मीवॉर्म का पहली ;1ेज्द्ध से छठी ;6जीद्ध लार्वा इंस्टार्स

मक्का में फॉल आर्मीवर्म का प्रकोप और नुकसान

फाल आर्मीवर्म मक्का में अंकुर निकलने से लेकर बालियो के विकास तक आक्रमण करता है। नवजात लार्वा अंडे से निकलकर फैल जाते हैं और युवा गौबपत्तों को खाने के लिए पत्ता गौब तक पहुंच जाते हैं। पहले और दूसरे इंस्टार के लार्वा 2–10 या उससे अधिक के समूह में, पत्तों के ऊतकों को खुरच कर गौब की कोमल पत्तियों को खाते हैं और केवल एपिडर्मल परत को छोड़ देते हैं। इस प्रकार, आरम्भिक लक्षण के तौर पर पारदर्शी धब्बे, ब्लॉच और षॉट–छिद्रों की खिड़कियों के रूप में दिखाई देते हैं, जो पूरी पत्तियों पर फैले होते हैं (चित्र 5 ं)। जब गौबपत्तों को खोलकर देखते हैं तो, तीसरे इंस्टार के कारण होने वाली क्षति षॉट–छिद्रों की श्रृंखला में में दिखाई देती है (चित्र 5 इ)। जैसे–जैसे लार्वा बढ़ता है, छिद्र का आकार बढ़ता जाता है और बाद की अवस्था वाले इंस्टार से पौध क्षति अधिक होती है, जिसके परिणामस्वरूप पत्ते व्यापक रूप से झड़ जाते हैं और गौब में बड़ी मात्रा में मल की एकत्रित गोलियां मिलती हैं (चित्र 5 बए क और म)। फाल आर्मीवर्म का संकमण फसल के प्रजनन चरण के दौरान भी जारी रहता है। चूंकि मक्का फसल की प्रजनन अवस्था में टेसल और भुट्टा, दोनों ही पौधे के बहुत संवेंदनशील भाग होते हैं अतः यह कीट नर मंजरी (टैसेल्स) को हानि पहुंचाता है (चित्र 6 ं) और विकासषील भुट्टे (बाली) (चित्र 6 इ) के अंदर छेद कर दानों को खा जाता है (चित्र 6 ब)। फॉल

आर्मीवॉर्म द्वारा गौब की क्षति के परिणामस्वरूप पैदावार में महत्वपूर्ण हानि होती है, जबकि बालियों को खाने से पैदावार और गुणवत्ता दोनों में गिरावट आती है।

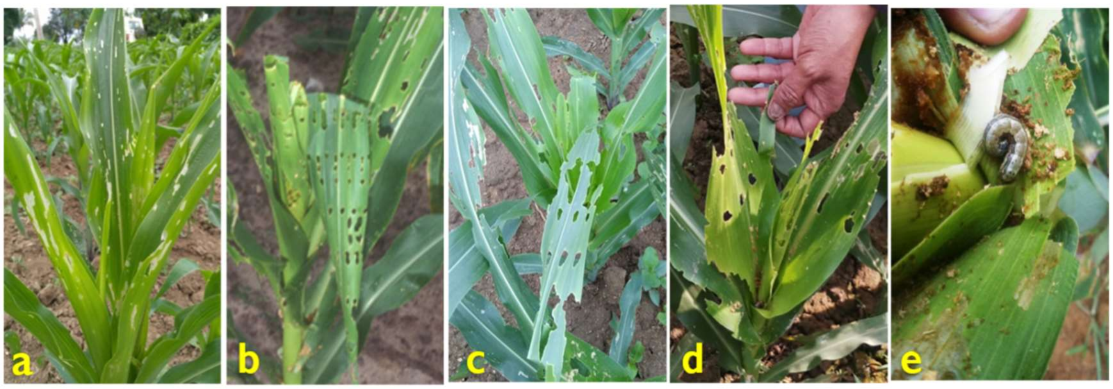

चित्र 5. मक्का में फाल आर्मीवर्म संकमण के लक्षणों की प्रगति ंण पहला और दूसरा इंस्टार, इण तीसरा इंस्टार बण चौथा इंस्टार कण 5वां इंस्टार और मण छठा इंस्टार

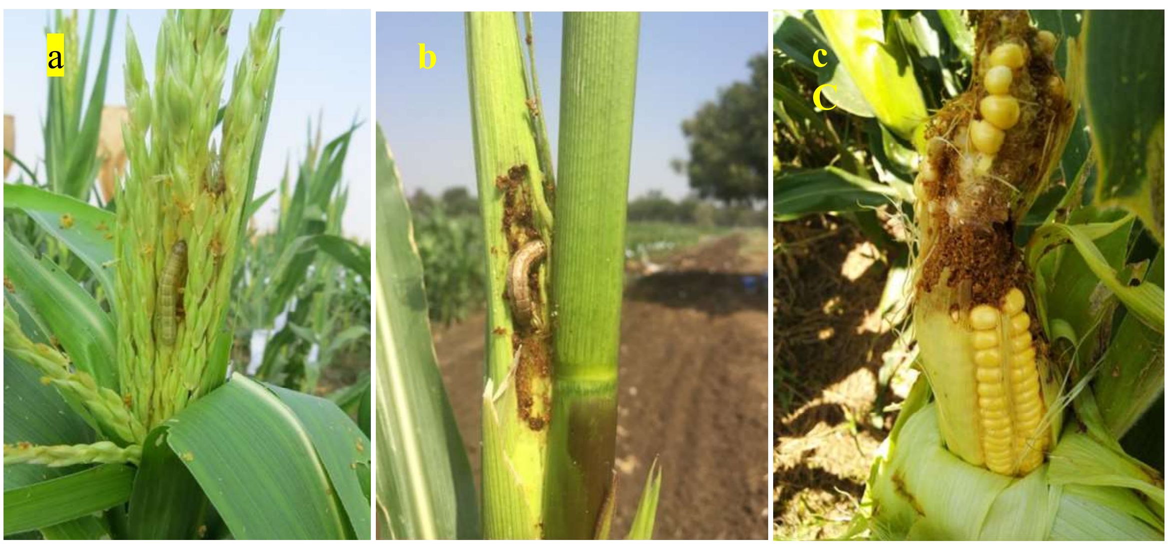

चित्र 6. फाल आर्मीवर्म लार्वा द्वारा क्षतिग्रस्त नर मंजरी ;ंद्ध और विकासषील भुट्टा ;इद्ध और स्वीट कॉर्न ;बद्ध

फॉल आर्मीवर्म का प्रबंधन

फॉल आर्मीवर्म के आगमन और इसकी गतिषीलता की निगरानी करना

फाल आर्मीवर्म के संकमण का षीघ्रातिषीघ्र पता लगाना और नियंत्रण उपायों को यथाषीघ्र अपनाना फाल आर्मीवर्म प्रबंधन हेतु महत्वपूर्ण उद्देष्य है। ऐसा इसलिए जरुरी है क्योंकि फाल आर्मीवर्म

के पहले से तीसरे इंस्टार के लार्वा शांत एवं छोटे होते है और यह अपने सम्पूर्ण जीवन चक्र में खाई गयी कुल पत्तियों का 2ः से भी कम खा पाता है, लेकिन जब यह छठे इंस्टार में विकसित होता है, तब 2–3 दिनों की अवधि में ही कुल खपत का 77ः खा जाता है। चूंकि क्षति की गम्भीरता लार्वा के आकार पर निर्भर करती है, नाषीजीव नियंत्रण के उपाय के विकल्प का चयन प्रचलित लक्षण के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार से प्रारम्भिक पहचान के लिए कीटों के आगमन और इसकी वर्तमान आबादी की निगरानी का निर्धारण फसल के अंकुरित होने से पहले / 4/एकड की दर से फेरोमोन जाल लगाकर किया जाता है। फसल पर एक कीट/ट्रैप/दिन या 5ः फाल आर्मीवर्म के संक्रमण को दर्ज करने पर, 5ः नीम की गुठली के अर्क का छिड़काव करें या एजाड़ीरेक्टिन,1500 पीपीएम (1 लीटर/एकड़) / 5 मिली/लीटर की सिफारिश प्रथम उपाय के रूप में अनुशंसित की जाती है क्योंकि यह अंडे सेने की क्षमता को कम करता है, ये रसायन एंटी फीडेंट एक्शन द्वारा शुरुआती इंस्टार लार्वा को नुकसान पहुंचाते हैं और प्रत्यक्ष मृत्यु दर और अण्डे देने वाली मादाओं को कुछ समय के लिए अंडे देने से रोकता हैं। फसल के पकने तक सप्ताह में एक बार ट्रैप कैच का अवलोकन करने से नियंत्रण उपायों की सफलता के साथ–साथ आगामी फसल के लिए नाषीजीव भार का आकलन करने का अंदाजा होता है।

देख–भाल (स्काऊटिंग)

पौधों के अंकुरित होते ही या फेरोमोन जाल द्वारा फाल आर्मीवर्म के आगमन के संकेत से, जो भी पहले हो, देख–भाल आरम्भ कर देनी चाहिए। कुछेक पौधों में फाल आर्मीवर्म द्वारा क्षति दिखाई देने पर नाषीजीवनाषी के अनुप्रयोग की आवष्यकता नहीं होती है; क्योकि यह किफायती नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, नियंत्रण उपायों का निर्धारण करने के लिए संक्रमण का स्तर फसल की वृद्धि के साथ–साथ बढ़ता है, चूंकि वृद्धि के साथ मक्का की पर्ण क्षतिपूर्ति क्षमता बढ़ जाती है। स्काउटिंग प्रक्रिया द्वारा पूर्ण देखबाल निर्धारित की जाती है अतः खेत में इस तरह से चले ताकि पूरे खेत देखने के साथ ही पौधों का बारीकी से अवलोकन/नमूनाकरण भी किया जा सके। 4–5 बाहरी पंक्तियों को छोड़कर खेत में 'डब्ल्यू', 'जेड' और सीढीनूमा पैर्टन में चलना एक सरल विधि है। प्रत्येक स्टॉपिंग प्वाइंट (ठहराव बिन्दु) पर 10 पौधों का अवलोकन करें और क्षतिग्रस्त पादपों की संख्या को दर्ज करें। प्रत्येक स्टॉपिंग प्वाइंट पर संक्रमित पादपों का प्रतिषत निकालें और अंत में सभी स्टॉपिंग बिन्दुओं का औसतन संक्रमण प्रतिषत निकाले। यदि अंकुरण से 6 पत्ती अवस्था तक औसत संक्रमण प्रतिशत 10 ः है, और यदि संक्रमण 6 पत्ती अवस्था पार करने के बाद 20 ः हो तो यहाँ किसी नाषीजीवनाषी का छिड़काव करना आवश्यक हो जाता है। खेत की देखभाल दाना भराव अवस्था तक प्रत्येक सप्ताह करनी चाहिए या उत्तर भारत के कठोर सर्दियों और गर्मियों के महीनों में जब नाषीजीव दबाव का खतरा कम हो जाता है, तब तक करनी

चाहिए। एक व्यापक क्षेत्र में व्यवस्थित पादप संरक्षण के लिए आम फसल प्रबंधन प्रथाओं द्वारा फाल आर्मीवर्म की आबादी का प्रबंधन हानिकारक स्तर से नीचे किया जा सकता है। फाल आर्मीवर्म प्रबंधन के लिए एक एकीकृत नाषीजीव प्रबंधन (आईपीएम) दृश्टिकोण का पालन किया जाना चाहिए, जिसका नीचे वर्णन किया गया है।

फॉल आर्मीवॉर्म प्रबंधन के लिए कृशि कियाओं का पैकेज

रोपण–पूर्व योजना और कृशि कियाएं

- मक्का की एकल कॉस संकर किस्मों और कसी हुई (टाइट) छिलके वाली मक्का की कृशिजोपजातियों (कल्टीवार) का चयन। जैसे कि संकर किस्म ब्वडभ्.8 कई लोकप्रिय संकर किस्मों अर्थात् च्डभ्.1ए क्ज्ञभ्9164ए क्डत्भ्.1301 आदि की तुलना में फाल आर्मीवर्म के प्रति सहिश्णु पाई गई।
- फसल की कटाई के बाद फाल आर्मीवर्म प्यूपा को सूर्य की रोषनी और परभक्षियों के सम्पर्क में लाने के लिए मिट्टी को खुला करने हेतु गहरी जुताई करें। यदि शून्य–जुताई अपनायी जाती है, तो 500 किग्रा/ हेक्टेयर की दर से नीम की खली का छिड़काव करें। खेतों को खरपतवार से मुक्त रखें और संतुलित उर्वरक अनुप्रयोग का पालन करें।
- क्षेत्र विशेष की उपयुक्त दलहन फसलों के साथ मक्का की अंतरफसल द्वारा पादप विविधता को अधिकतम बनाने की योजना बनाए। जैसे कि मक्का . लोबिया/मोठ/मूंगफली/अरहर/उड़द/मूंग 2:1 के अनुपात में विभिन्न कृशि–पारिस्थितिकियों में आषाजनक पाई गई है।
- मक्का के खेतों के चारों ओर नेपियर घास/संकर नेपियर की 3–4 कतारें जाल (ट्रैप) फसल के रूप में लगाएं।
- उभार (भ्पसस) पर मक्का की बुवाई से बचना चाहिए, थिनिंग (Thinning) द्वारा प्रत्येक उभार पर एक पादप रखा जाना चाहिए।
- समकालिक रोपण का पालन करने के लिए सामुदायिक स्तर पर बुवाई–समय की योजना बनाएं।
- बुनियादी खुराक के रूप में केवल एनपीके की अनुषंसित खुराक का ही अनुप्रयोग करें और नाषीजीवनाषी अनुप्रयोग के बाद नाइट्रोजन के छिड़काव से फसल की वृद्धि को बढ़ावा मिलेगा।
- नाषीजीव के आगमन और इसकी आबादी के निर्माण पर निगरानी रखने के लिए फसल के अंकुरण के समय या इससे पहले / 4/एकड़ की दर से फाल आर्मीवर्म फेरोमोन जाल लगाएं।
- फसल की बुवाई के तुरंत बाद पक्षियों के बैठने के लिए /10/एकड़ की दर से पक्षी बसेरे या शरण स्थल (चमतबीमे) खड़े करें।

➢ साप्ताहिक निरीक्षण (स्काउटिंग) का अनुपालन करें और कार्रवाई सीमा (।बजपवद जीतमेीवसक) पर लक्षण आधारित नियंत्रण उपायों को अपनाएं। निरिक्षण करते समय, अंडा समूह और लार्वा को हाथ से उठाएं और इन्हें मसल कर नश्ट कर दें।

बुवाई से छह पत्ती अवस्था तक प्रबंधन उपायः

➢ **बीज उपचारः** 6 मिली / प्रति किग्रा बीज की दर से साइनट्रानिलिप्रोएल 19.8ः. थियामेथोक्साम 19.8ः एफएस कम से कम दो सप्ताह के लिए सुरक्षा प्रदान करता है।

➢ बुवाई के बाद / 4 / एकड़ की दर से फेरोमोन जाल लगाएं और कीट पकड़ने की निगरानी करें।

➢ एक कीट / जाल / दिन या 5ः पादप संक्रमण दिखाई देने के तुरंत बाद पहला छिड़काव 5ः नीम के बीज की गुठली के अर्क (NSKE) या एजाडिरेक्टिन (एक लीटर / एकड़) / 5 मि.ली. / लीटर की दर से किया जाना चाहिए। वैकल्पिक रूप से 2–3 सप्ताह के अंतराल पर *ट्राइकोग्रामा चिलोनिस* 50,000 की दर से या *टेलीनोमस रेमस* 10,000 वयस्क / हेक्टेयर की दर से उन पारिस्थितिकियों पर अंकुरण के एक सप्ताह के भीतर छोड़ें या षुरू करें, जहां यह लागू और उपलब्ध है।

➢ यदि आवष्यक हो तो, 10–20ः संक्रमण होने पर दूसरा छिड़काव 10–14 दिनों के बाद *बैसिलस थुरिंगिएन्सिस* फॉर्मूलेशन / 2 ग्राम / लीटर (400 ग्राम / एकड़) *मेथेरिजियम एनिसोप्लिया* या *ब्यूवेरिया बेसियाना* (1×10^8 सीएफयू / ग्राम) / 5 ग्राम / लीटर (1 किग्रा / एकड़) की दर से या एसएफएनपीवी (1.5×10^{12} पीओबी / हेक्टेयर) / 4 मिली / लीटर (800 मिली / एकड़) की दर सेया एंटोमोपैथोजेनिक नेमाटोड (*हेटेरोरहैबडाइटिस इंडिका*) 20 ग्राम / लीटर पानी (4 किग्रा / एकड़) की दर के साथ करने की अनुषंसा की जाती है।

➢ यदि संक्रमण 20ः की अवस्था को पार कर जाता है, तो सूचीबद्ध किसी भी रासायनिक नाषीजीवनाषी का छिड़काव करें:

I. क्लोरंट्रानिलिप्रोएल 18.5 एससी. 0.4 मिली / ली. (80 मिली / एकड़) की दर से
II. इमामेक्टिन बेंजोएट 5ः एसजी. 0.4 ग्राम / लीटर (80 ग्राम / एकड़) की दर से
III. स्पाइनेटोरम 11.7ःएससी 0.5 मिली / लीटर (100 मिली / एकड़) की दर से .
IV. क्लोरेंट्रानिलिप्रोएल 9.3ः लैम्ब्डा साइहलोथ्रिन 4.6ः जेडसी 0.5 मिली / लीटर (100 मिली / एकड़)
V. नोवेल्यूरॉन 5.25ः. इमामेक्टिन बेंजोएट 0.9ः एससी 2 मिली / लीटर

सात पत्ती अवस्था से पुश्पण तक के प्रबंधन उपाय

- यदि संक्रमण 30: से अधिक हो जाता है तो ऊपर उल्लिखित जैव नाषीजीवनाषियों में से किसी का भी उपयोग करें, यदि लक्षण पहले और दूसरे इंस्टार लार्वा की उपस्थिति का संकेत देते हैं तो अधिक आयु के लार्वा द्वारा होने वाली क्षति की अधिक गम्भीरता के लिए रासायनिक नाषीजीवनाषियों का छिड़काव करें।
- बाद की अवस्था वाले इंस्टार लार्वा के लिए जहर चारा (च्वपेवद इंपज) प्रभावी और वैकल्पिक उपाय है। 10 किलोग्राम चावल की भूसी . 2 किलोग्राम गुड़ को 3 लीटर पानी में मिलाएं। इस मिश्रण को 24 घंटे के लिए किण्वित (फरमेंट) होने के लिए रख दें। ऊपर उल्लिखित अनुषंसित कीटनाषकों में से किसी एक को, उनकी अनुषंसित खुराक के अनुसार इसमें मिलाएं और अनुप्रयोग से आधे घंटे पहले इसमें 1 किग्रा रेत मिलाएं। इनकी छोटी–छोटी गोली बनाए और इनका अनुप्रयोग केवल संक्रमित पादपों की गौब में करें।

पुश्पण से कटाई तक

- भुट्टे या बाली में छेद करके लार्वा को हाथ से उठाकर नश्ट करना ।
- भुट्टे की 10: क्षति होने पर, 2 ग्राम/लीटर (400 ग्राम/एकड़) की दर से *बैसिलस थुरिंजिएन्सिस* संरूपण या 5 ग्राम./लीटर (1 किग्रा/एकड़) की दर से *मेथिरिजियम एनिसोप्लिया* या *ब्यूवेरिया बेसियाना* (1×10^{8} बनिध्ह) या 4 मिली/लीटर (800 मिली/एकड़) की दर से ॅछिच्ट (1ण्5×10^{12} पीओबीएस/ हेक्टेयर) या 20 ग्राम/लीटर पानी (4 किग्रा/एकड़) की दर से एंटोमोपैथोजेनिक सूत्रकृमि (*हेटेरोरहैबडाइटिस इंडिका*) की अनुषंसा की जाती है।
- वैकल्पिक रूप से *ट्राइकोग्रामा प्रीटियोसम* / 50,000 की दर से या *टैलीनोमस रेमस* / 10,000 वयस्क/हेक्टेयर की दर से उन पारिस्थितिकियों में जहां यह लागू और उपलब्ध है, पुश्पण पूर्व अवस्था में डालें।

सावधानियां

1. जहर चारा और कीटनाषक स्प्रे तैयार करने और इसके अनुपयोग के दौरान दस्ताने और मास्क का प्रयोग करें।
2. सभी नाषीजीवनाषी स्प्रे और जहर चारे को सीधे गौब (पत्ता–समूह) पर अनुप्रयोग करना चाहिए।
3. नाषीजीवनाषी छिड़काव करने के उपरांत कम से कम 48 घंटे बाद ही खेत में प्रवेष करें।
4. कम से कम एक महीने तक के लिए नाषीजीवनाषी के छिड़काव वाले और जहरीले चारे वाले खेतों में पषुओं को चराने से बचें।

फाल आर्मीवर्म एकीकृत नाषीजीव प्रबंधन का सबसे अधिक विष्वसनीय, परन्तु चुनौतीपूर्ण पहलु है कि लक्षणों का षीघ्र पता लगाया जाए और कार्रवाई सीमा (जितर्मीवसक) का निर्धारण किया जाए। इसके लिए, विस्तार कार्यक्रमों में नाषीजीव की सही पहचान और देखभाल पर जोर दिया जाना चाहिए। इससे संबंधित जानकारी विभिन्न मीडिया के माध्यम से प्रसारित की गई है। इनमें से फाल आर्मीवर्म की पहचान, देखभाल, और प्रबंधन पर एक उल्लेखनीय एनिमेटेड वीडियों है, जिसे साइंटिफिक एनिमेषन विदाउट बॉर्डर्स (SAWBO),मिषिगन राज्य विष्वविद्यालय द्वारा तैयार किया गया है। एसएडब्ल्यूबीओ ने इसे पर भाकृ अनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना के सहयोग से क्रमषः हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, तेलुगु, कन्नड, तमिल, उड़िया, बंगाली, मणिपुरी, मिजो और नागामीज में और आईसीएआर– कृषि विज्ञान केंद्र और 6 सहकारी अन्न समितियों (Grain Cooperative Society) के सहयोग से मलयालम और मराठी में भी उपलब्ध करवाया है।

प्रदूषित मिट्टी के प्रबंधन के लिए समाधान

डॉ. शुभम यादव
विश्लेषणात्मक विज्ञान प्रभाग, कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान, गुरुग्राम, हरियाणा, भारत
ईमेल: yadavshubham3092@gmail.com

विश्व मृदा दिवस 2002 में मिट्टी के महत्व और मानव स्वास्थ्य एवं सुरक्षा में इसके महत्वपूर्ण योगदान की प्रसिद्धी के लिए अंतर्राष्ट्रीय मृदा विज्ञान संघ (IUSS) द्वारा स्थापित किया गया था। 20 दिसंबर, 2013 को, 68वीं संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 5 दिसंबर, 2014 को विश्व मृदा दिवस और 2015 को अंतर्राष्ट्रीय मृदा वर्ष के रूप में मान्यता दी। मृदा प्रदूषण मिट्टी के प्रदूषकों की उपस्थिति के कारण मिट्टी की उत्पादकता में कमी हो जाती है। मृदा प्रदूषकों का मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और इसकी उत्पादकता कम हो जाती है। कीटनाशक, उर्वरक, जैविक खाद, रसायन, रेडियोधर्मी अपशिष्ट, फेंके गए भोजन, कपड़े, चमड़े के सामान, प्लास्टिक, कागज, बोतलें, टिन-डिब्बे और कार कैसेस- ये सभी मिट्टी के प्रदूषण में योगदान करते हैं। रसायन जैसे लोहा, सीसा, पारा, तांबा , जस्ता, कैडमियम, एल्यूमीनियम, साइनाइड, एसिड और क्षार आदि औद्योगिक कचरे में मौजूद होते हैं और या तो सीधे पानी के साथ या हवा के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से (जैसे अम्लीय वर्षा के माध्यम से) मिट्टी तक पहुँचते हैं। फसलों को कीटों, कवक आदि से बचाने के लिए शाकनाशियों, कीटनाशकों और कवकनाशियों का अनुचित और निरंतर उपयोग मिट्टी की मूल संरचना को बदल देता है और पौधों की वृद्धि के लिए मिट्टी को विषाक्त बना देता है। खनन और परमाणु प्रक्रियाओं से रेडियोधर्मी अपशिष्ट पानी के माध्यम से या 'फॉल-आउट' के रूप में मिट्टी तक पहुँच सकते हैं। मिट्टी से वे पौधों तक पहुँचते हैं और फिर चरने वाले जानवरों (पशुओं) में पहुँचते हैं जहाँ से अंततः दूध और मांस आदि के माध्यम से मनुष्य तक पहुँचते हैं जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य की वृद्धि मंद और असामान्य होती है। फसल की पैदावार को बढ़ावा देने के लिए जैविक खाद के रूप में मानव और पशु मलमूत्र का उपयोग किया जाता है, मलमूत्र में मौजूद रोगजनकों के साथ मिट्टी और सब्जियों की फसलों को दूषित करके मिट्टी को प्रदूषित करते हैं। नाइट्रिफिकेशन, जो प्राथमिक वायुमंडलीय नाइट्रोजन या मूल रूप से हानिरहित कार्बनिक पदार्थों से घुलनशील नाइट्रेट बनाने की प्रक्रिया है, वास्तव में जल प्रदूषण में योगदान देता है जब नाइट्रेट मिट्टी से बाहर निकल जाते हैं और पानी की आपूर्ति में जहरीले स्तर तक जमा हो जाते हैं। इसलिए, सिंचाई , अत्यधिक उर्वरकों, कीटनाशकों आदि के तरीकों से कृषि उत्पादन में वृद्धि ने

मृदा प्रदूषण की समस्याएँ पैदा की हैं। उपर्युक्त मृदा प्रदूषकों के उपयोग को प्रतिबंधित करके, जैविक खेती का सहारा लेकर, बेहतर कृषि पद्धतियों को अपनाकर मृदा प्रदूषण को रोका जा सकता हैं।

मृदा प्रदूषण के प्रकार

मृदा प्रदूषण कोई भी रसायन या संदूषक हो सकता है जो जीवित जीवों को नुकसान पहुंचाता है। प्रदूषक मिट्टी की गुणवत्ता को कम करते हैं और मिट्टी की प्राकृतिक संरचना को भी बिगाड़ते हैं और मिट्टी का क्षरण भी करते हैं। मृदा प्रदूषण के प्रकारों को प्रदूषक के स्रोत और पारिस्थितिक तंत्र के प्रभावों से अलग किया जा सकता है। मृदा प्रदूषण के प्रकारों में कृषि प्रदूषण, औद्योगिक अपशिष्ट और शहरी गतिविधियाँ हो सकती हैं।

कृषि प्रदूषण

- कृषि प्रक्रियाएं मृदा प्रदूषण में योगदान करती हैं।
- उर्वरक फसल की पैदावार बढ़ाते हैं और प्रदूषण भी पैदा करते हैं जो मिट्टी की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।
- कीटनाशक मिट्टी को दूषित करके पौधों और जानवरों को भी नुकसान पहुँचाते हैं।
- ये रसायन मिट्टी के अंदर गहराई तक पहुँच जाते हैं और भूजल प्रणाली को जहरीला बना देते हैं। वर्षा और सिंचाई द्वारा इन रसायनों का बहाव भी स्थानीय जल प्रणाली को दूषित करता है और अन्य स्थानों पर जमा हो जाता है।

औद्योगिक कूड़ा

- लगभग 90% तेल प्रदूषण औद्योगिक अपशिष्ट उत्पादों के कारण होता है।
- कचरे का अनुचित निपटान मिट्टी को हानिकारक रसायनों से दूषित करता है।
- ये प्रदूषक पौधों और जानवरों की प्रजातियों और स्थानीय जल आपूर्ति और पीने के पानी को प्रभावित करते हैं।
- विनियमित लैंडफिल से जहरीले धुएं में ऐसे रसायन होते हैं जो अम्लीय वर्षा के रूप में वापस पृथ्वी पर गिर सकते हैं और मिट्टी की रूपरेखा को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

शहरी गतिविधियाँ

- मानवीय गतिविधियों से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मृदा प्रदूषण हो सकता है।
- अनुपयुक्त जल निकासी और पानी के बहाव में वृद्धि आसपास के भूमि क्षेत्रों या धाराओं को दूषित करती है।

• कचरे का अनुचित निपटान मिट्टी में टूट जाता है और यह कई रसायनों और प्रदूषकों को मिट्टी में जमा कर देता है। ये फिर से भूजल में रिस सकते हैं या स्थानीय जल प्रणाली में बह सकते हैं।

• अत्यधिक अपशिष्ट जमाव से मिट्टी में बैक्टीरिया की उपस्थिति बढ़ जाती है।

• बैक्टीरिया द्वारा अपघटन मीथेन गैस उत्पन्न करता है जो ग्लोबल वार्मिंग और खराब वायु गुणवत्ता में योगदान देता है। यह दुर्गंध भी पैदा करता है और जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है।

मृदा प्रदूषण के प्रभाव

मृदा प्रदूषण का मुख्य कारण मानवजनित गतिविधियों की उपस्थिति के कारण है। ये अपशिष्ट उत्पाद उन रसायनों से बने होते हैं जो मूल रूप से प्रकृति में नहीं पाए जाते हैं और इसलिए मृदा प्रदूषण को बढ़ावा देते हैं। मृदा प्रदूषण आमतौर पर औद्योगिक गतिविधि, कृषि में इस्तेमाल होने वाले रसायनों और कचरे के अनुचित निपटान के कारण होता है। मृदा संदूषण दूषित मिट्टी के साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संपर्क के कारण स्वास्थ्य जोखिम पैदा करता है। मृदा प्रदूषण से पारिस्थितिक संतुलन में भारी गड़बड़ी होती है और जीवों के स्वास्थ्य को भी खतरा होता है। मिट्टी पर प्रदूषण के प्रभाव काफी परेशान करने वाले हैं और इसके परिणामस्वरूप पृथ्वी पर पारिस्थितिक संतुलन और जीवित प्राणियों के स्वास्थ्य में भारी गड़बड़ी हो सकती है। आमतौर पर प्रदूषित मिट्टी में फसलें भलीभांति नहीं उग सकतीं और न पनप सकती हैं। हालांकि अगर कुछ फसलें उगने में कामयाब हो जाती हैं, तो हो सकता है कि इन फसलों ने मिट्टी में जहरीले रसायनों को अवशोषित कर लिया हो और इसका सेवन करने वाले लोगों में गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं पैदा हो सकती हैं। कभी-कभी मृदा प्रदूषण मृदा की बढ़ी हुई लवणता के रूप में होता है। ऐसे में मिट्टी वनस्पति के लिए अस्वास्थ्यकर हो जाती है, और अक्सर अनुपयोगी और बंजर हो जाती है। जब मृदा प्रदूषण मिट्टी की संरचना को संशोधित करता है, तो मिट्टी में कई लाभकारी मृदा जीवों (जैसे केंचुए) की मृत्यु हो सकती है। जीवन का समर्थन करने के लिए मिट्टी की क्षमता को और कम करने के अलावा, यह घटना बड़े पक्षियों पर भी प्रभाव डाल सकती है और उन्हें भोजन की तलाश में अन्य स्थानों पर जाने के लिए मजबूर कर सकती है। प्रदूषित भूमि के पास रहने वाले लोगों में माइग्रेन, मितली, थकान, त्वचा विकार और यहां तक कि गर्भपात होने की संभावना अधिक होती है। मिट्टी में मौजूद प्रदूषकों के आधार पर, मृदा प्रदूषण के कुछ दीर्घकालिक प्रभावों में कैंसर, ल्यूकेमिया, प्रजनन संबंधी विकार, गुर्दे और यकृत

की क्षति और केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की विफलता शामिल हैं। जैसे-जैसे दुनिया अधिक औद्योगीकृत होती जा रही है, वैसे-वैसे मृदा प्रदूषण के दीर्घकालिक प्रभाव पूरे विश्व में एक समस्या बनते जा रहे हैं। ऐसा माना जाता है कि चीन की पूरी 150 मिलियन मील की कृषि भूमि दूषित है। यहां तक कि जब भोजन के लिए मिट्टी का उपयोग नहीं किया जा रहा है, तब भी इसके दूषित होने की बात स्वास्थ्य संबंधी चिंता का विषय हो सकती है। यह विशेष रूप से तब होता है जब वह मिट्टी पार्कों, मोहल्लों या अन्य स्थानों पर पाई जाती है जहाँ लोग समय बिताते हैं। मिट्टी में किस तरह का प्रदूषक है, इसके आधार पर स्वास्थ्य प्रभाव अलग-अलग होंगे। यह विकास संबंधी समस्याओं से लेकर हो सकता है, जैसे कि सीसे के संपर्क में आने वाले बच्चों में, क्रोमियम से कैंसर और उर्वरक में पाए जाने वाले कुछ रसायन, चाहे वे रसायन अभी भी उपयोग किए जाते हैं या प्रतिबंधित हैं लेकिन अभी भी मिट्टी में पाए जाते हैं। मिट्टी के कुछ प्रदूषक ल्यूकेमिया के जोखिम को बढ़ाते हैं, जबकि अन्य गुर्दे की क्षति, यकृत की समस्याओं और केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में परिवर्तन का कारण बन सकते हैं। ये मृदा प्रदूषण के दीर्घकालीन प्रभाव हैं। अल्पावधि में, मिट्टी में रसायनों के संपर्क में आने से सिरदर्द, मतली, थकान और त्वचा पर चकत्ते हो सकते हैं। जब पर्यावरण की बात आती है, तो दूषित मिट्टी का नुकसान और भी गंभीर होता है। मिट्टी जो दूषित हो चुकी है, उसे अब भोजन उगाने के लिए उपयोग नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि रसायन भोजन में जाकर इसे खाने वाले लोगों को नुकसान पहुंचा सकते हैं। यदि दूषित मिट्टी का उपयोग भोजन उगाने के लिए किया जाता है, तो भूमि आमतौर पर कम पैदावार पैदा करेगी, अगर यह दूषित नहीं होती। बदले में, इससे और भी अधिक नुकसान हो सकता है क्योंकि मिट्टी पर पौधों की कमी अधिक कटाव का कारण बनेगी, दूषित पदार्थों को उस भूमि पर फैलाना जो पहले दूषित नहीं हो सकता था। इसके अलावा, प्रदूषक मिट्टी की संरचना और उसमें रहने वाले सूक्ष्मजीवों के प्रकारों को बदल देंगे। यदि क्षेत्र में कुछ जीव मर जाते हैं, तो बड़े शिकारी जानवरों को भी दूर जाना होगा या मरना होगा क्योंकि उनकी खाद्य आपूर्ति समाप्त हो गई है।

प्रदूषित मिट्टी के लिए समाधान

प्रदूषण की दर को कम करने के लिए कई उपाय सुझाए गए हैं। पर्यावरण को साफ करने के प्रयासों में बहुत समय और संसाधनों की आवश्यकता होती है। मृदा प्रदूषण को कम करने के कुछ उपाय हैं:

• 20 माइक्रॉन से कम मोटाई वाली प्लास्टिक की थैलियों के उपयोग पर प्रतिबंध।

• प्लास्टिक कचरे का पुनर्चक्रण।

• वनों की कटाई पर प्रतिबंध।

• वृक्षारोपण कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना।

• सामाजिक और कृषि वानिकी कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना।

• जागरूकता कार्यक्रम चलाना।

• रासायनिक खाद और कीटनाशकों का प्रयोग कम करना।

• कागज, प्लास्टिक और अन्य सामग्रीका पुनर्चक्रण

• प्लास्टिक की थैलियों के उपयोग पर प्रतिबंध, जो प्रदूषण का एक प्रमुख कारण हैं।

• पुन: उपयोग सामग्री।

• वनों की कटाई से बचना और वनों को बढ़ावा देना।

• परमाणु कचरे सहित उपयुक्त और सुरक्षित निपटान।

• रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के स्थान पर जैविक खादों और कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।

• सामाजिक और कृषि वानिकी कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना।

• कई प्रदूषण जागरूकता कार्यक्रमों का संचालन करना।

. जैविक उपचार

निष्कर्ष

अपशिष्ट प्रबंधन पदानुक्रम को अपनाना जो प्रदूषित मिट्टी प्रबंधन की निवारक विधियों में से एक है, मिट्टी के प्रदूषण की समस्या को काफी हद तक हल कर सकता है। कृषि गतिविधियों में कीटनाशकों और उर्वरकों के विवेकपूर्ण उपयोग से कृषि गतिविधियों में रसायनों की मात्रा कम हो सकती है और इससे मिट्टी के प्रदूषण को कम किया जा सकता है। जैव-कीटनाशकों और जैव-उर्वरकों का उपयोग जो पर्यावरण के अनुकूल हैं, फसल की उपज में वृद्धि करते हैं और मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार के साथ-साथ मिट्टी के प्रदूषण को रोकते हैं।

प्लास्टिक को बायोडिग्रेडेबल सामग्री से बदलना: प्लास्टिक के स्थान पर कपड़े और कागज की थैलियों के उपयोग से मिट्टी को अजैव निम्नीकरणीय सामग्री से संदूषण से बचाया जा सकेगा। कचरे के उचित निपटान से कचरे के मिट्टी तक पहुंचने की संभावना कम हो जाती है। वनीकरण जिसमें जनता के लिए बीज और रोपण सामग्री का वितरण वन के क्षेत्र में वृद्धि करेगा जिससे मिट्टी के कटाव को रोका जा सकेगा। प्रदूषित मिट्टी का जैविक उपचार जिसमें हरे पौधों, कवक और बैक्टीरिया का उपयोग तटस्थता के लिए या मिट्टी में प्रदूषकों को हटाने के

लिए किया जाता है, में अच्छी उपचारात्मक क्षमता होती है और भौतिक और रासायनिक विधियों पर लाभ होता है क्योंकि वे कम खर्चीले, पर्यावरण की दृष्टि से टिकाऊ और सौंदर्य की दृष्टि से मनभावन होते हैं। आदर्श, पर्यावरण के अनुकूल, प्रभावोत्पादक, लागत प्रभावी प्रकृति के उत्पादों को फिर से डिजाइन करने से मृदा प्रदूषण की संभावना को रोका जा सकेगा और पृथ्वी को हरा-भरा बनाया जा सकता है।

स्मार्ट फार्मिंग में जीवाणु खाद की भूमिका

आर एस सेंगर कृशानु वर्षा रानी कुशाग्र यादव
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्विद्यालय मेरठ २५०११०

''एक लम्बे समय से रासायनिक खादों का प्रयोग किए जाने के बाद वर्तमान में भूमि की प्राकृतक उत्पादन क्षमता दिन प्रति दिन कम होती जा रही है। अब अन्र्राष्ट्रीय स्तर पर भी यह अनुभव किया जा रहा है कि रासायनिक खादों एवं विभिन्न कृषिगत रसायनों जैसे– विभिन्न कीटनाशक, फँफूदीनाशक तथा खरपतवारनाशक, आदि के अविवेकपूर्ण प्रयोग के कारण मृदा, जल, वायु एवं मानव आदि सभी पर इसका प्रतिकूल प्रभाव दिखाई दे रहा है। इन रसायनों के अवशेष मानव शरीर के अन्दर किसी न किसी रूप में प्रवेश कर विभिन्न रोग (विकृतियों) को भी जन्म दे रहे हैं। इस स्थिति में अब यह आवश्यक हो गया है कि इन रसायनों का कोई उपयुक्त विकल्प जैसे जीवाणु एवं जैविक खाद का उपयोग किया जाए। राइजाबियम, एजेक्टोबैक्टर, एजोस्पायरिलम, नीलहरित शैवाल तथा अजोला के जैसे जीवाणु जो कि भूमि में नाइट्रोजन की उपलब्धता को बढ़ाते हैं, जबकि स्यूडोमोनास, बेसीलस जीवाणु एवं माइकोराजा कवक, फॉस्फोरस के विलयीकरण में सहायता प्रदान करते हैं। जीवाणु खादों में दलहनी फसलों के लिए विशेष रूप से ''राइजोबियम कल्चर'', अनाज और सब्जियों वाली फसलों के लिए 'एजेटोबैक्टर कल्चर' तथा धान की फसल के लिए 'नीलहरित शैवाल अर्थात ब्लू ग्रीन एल्गी' का अधिकाँशतः प्रयोग किया जाता है।''

अधिकतर खादों में फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं जो फसलों के लिए मृदा में घुलनशील होते हैं, जबकि जीवाणु खादों में फसलों के लिए किसी भी प्रकार के पोषक तत्व उपलब्ध नही होते हैं, यह जीवाणु मृदा अथवा वायु के माध्यम से फसलों को समस्त पोषक तत्वों को उपलब्ध कराते हैं और यह अन्य सभी खादों की अपेक्षा काफी सस्ते भी होते हैं। इसके साथ ही इन उर्वरकों के माध्यम से मृदा में होने वाली जैव–रासायनिक गतिविधियों के द्वारा मृदा की आंतरिक संरचना में भी व्यापक सुधार करते हैं।

नाइट्रोजन को स्थिर करने वाले जीवाणु खाद

राइजोबियम

राइजोबियम जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों में गुलाबी रंग की गाँठ बनाते हैं और इन गाँठों के अन्दर ही राइजोबियत जीवाणु विद्यमान होता है, जो कि वायुमण्ड़लय नाइट्रोजन को भूमि में स्थापित करता है और पौधों के द्वारा इसे आसानी के साथ शोषित कर लिया जाता है। राइजोबियम कल्चर के प्रयोग से भाूमि के अन्दर लगभग 15 से 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से नाइट्रोजन का लाभ प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त इसके प्रयोग से उपज में भी लगभग 10 प्रतिशत की वृद्विृ होती है। राइजोबियम कल्चर का प्रयोग

मूँग, उड़द, अरहर, मटर, चना, मूँगफली, मेथी, मसूर, चवली तथा बरसीम आदि फसलों में किया जाता है। अलग–अलग फसलों के लिए अलग–अलग राइजोबियम कल्चर का प्रयोग किया जाता है।

एजेक्टोबैक्टर कल्चर

उक्त जीवाणु गन्ने के अन्दर रहता है जो पौधे के समस्त भागों में पाया जाता है। यह नाइट्रोजन का परिवर्तन कर वृद्धि–हार्मोन बनाता है। यह सामान्य फसल के उत्पादन में 5–20 प्रतिशत तथा चीनी के उत्पादन में 5–15 प्रतिशत तक की वृद्धि करता है।

एजोस्पिरिलम कल्चर

एजोस्पिरिलम के जीवाणु पौधों की जड़ों के आसपास तथा उनकी जड़ों पर समूह बनाकर रहते हैं, जो पौधों को वायुमण्ड़लीय नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं। इस कल्चार का उपयोग ज्वार, बाजरा, महुआ, मक्का, घास एवं चारे वाली फसलों की उपज में वृद्धि के लिए किया जाता है। इस जीवाणु खाद का प्रयोग करने से 15–20 कि.ग्रा नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर की दर से प्राप्त होती है। इसके अलावा यह जीवाणु विभिन्न प्रकार के पादप हार्मोन्स का विसरण भी करते हैं, जो पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं। एजोस्पिरिलम जीवाणु, जड़ों के विस्तार तथा फैलाव में भी सहायक होते हैं। इसका प्रयोग करने से पोषक तत्वों, खनिज तथा जल अवशोषण की क्रिया में वृद्धि होती है। जिन फसलों को अधिक पानी की आवश्यकता होती है उनमें इसका प्रयोग विशेष रूप से लाभकारी होता है।

चित्रः जीवाणु खाद के प्रयोग से होने वाले लाभ

जीवाणु खाद से प्राप्त होने वाले लाभ

- जीवाणु खादों का प्रयोग करने से फसलों की प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है।
- इसका प्रयोग करने से भूमि की उर्वराशक्ति में भी पर्याप्त वृद्धि होती है।
- इस कल्चर के प्रयोग से फसल की पैदावार में भी वृद्धि होती है।
- बुआई से पूर्व कल्चर के माध्यम से बीजोपचार करने से बीजों में अंकुरण क्षमता बढ़ जाती है।
- दलहनी फसलों के बाद अन्य दूसरी फसलों को नाइट्रोजन की प्राप्ति होती है।

नील हरित शैवाल खाद

यह एक तन्तुदार प्रकाश संश्लेषी सूक्ष्मजीव है, जो वायुमण्ड़लीय नाइट्रोजन को भूमि में स्थिर करते हैं और उसे पोधों के लिए उपलब्ध कराते हैं। नीलहरित शैवाल (काई) प्रकृति में उपलब्ध एक ऐसा जैविक स्रोत है, जिसका उपयोग धान की खेती में जैविक खाद के रूप में किया जाता है। नील हरित शैवाल खाद का प्रयोग करने से 20–30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से नाइट्रोजन की प्राप्ति होती है, जो लगभग 65 कि.ग्रा. रासायनिक उर्वरक (यूरिया) के बराबर होती है।

जीवाणु खाद से बीज उपचार करने का तरीका

- सभी प्रकार के जीवाणु खाद के माध्यम से बीज को उपचारित करने का तरीका एक जैसा ही है।
- बुआई के लिए बीज का चयन होने के बाद फसल के अनुसार उपयुक्त जीवाणु खाद का चयन करना चाहिए।
- बीज को उपचारित करने के लिए सबसे पहले आधा लीटर पानी में जीवाणु खाद विशिष्ट मात्रा में डालें, फिर उसके अन्दर 100 ग्राम गुड़ डालकर उसे पानी के साथ अच्छी तरह से मिश्रित करें। इस घोल को बीजों के ऊपर छिड़के तथा फिर बीजों को हाथों से मिलाए ऐसा करने से कल्चर को बीज से चिपके रहने में मदद प्राप्त होती है। अब बीज बुआई के तैयार है।
- अब इस उपचरित बीज को छाया में सुखाकर शीघ्र ही बुआई करें।

- जिन फसलों की पौध लगाई जाती है, उनकी रोपाई करने से पूर्व पौधों की ज्ड़ों का उपचार इसी घोल में डुबो कर किया जा सकता है।
- बीज उपचार एक से अधिक जीवाणु कल्चर के माध्यम से भी किया जा सकता है, जैसे– राइजोबियम–ट्राइकोडर्मा। हालांकि बीज उपचार करने की पक्रिया को प्रत्येक जीवाणु कल्चर के साथ पृथक ही किया जाना उचित रहता है।

अजोला

अजोला पानी में फैलने वाले छोटे एवं बारीक पौधों की एक प्रजाति है, जिसे विज्ञान की भाषा में फर्न कहा जाता है। अजोला की पंखुड़ियों में एनाबीना नामक नीलहरित काई की प्रजाति का एक सूक्ष्मजीव होता है जो सूर्य के प्रकाश में वायुमण्ड़लीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करता है। इस प्रकार हरी की तरह से फसल के लिए नाइट्रोजन को उपलब्ध कराता हैं। अजोला की विशेषता यह है कि यह अपने अनुकूल वातावरण में 5 दिनों में ही दो–गुना हो जाता है। अजोला में 3.5 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा अन्य विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थ उपलब्ध होते हैं जो भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और धान के खेतों में इसका उपयोग सुगमता के साथ किया जा सकता है। 2 से 4 इंच पानी भरे खेत में 10 टन अजोला रोपाई से पूर्व दिया जाता है। इसके साथ ही इसके ऊपर 30 सें 40 कि.ग्रा. सुपर फॉस्फेट का छिड़काव भी कर दिया जाता है। अजोला का उपयोग करने से धान की फसल में 5 से 15 प्रतिशत अधिक उत्पादन की सम्भावना होती है।

फॉस्फोरस घोलक जीवाणु खाद

रासायनिक रूप के माध्यम से प्रदान की जाने वाली फॉस्फोरस मृदा में स्थिर होती है और पौधों के द्वारा उसका पूरी तरह से अवशोषण नही हो पाता है। ऐसे में फॉस्फोरस घोलक जीवाणु इस फाफस्फोरस को घुलित अवस्था में कर इसकी उपलब्धता को पौधों के लिण कराते हैं।

ट्राइकोडर्मा

यह परजीवी कवक मृदा में काबनिक पदार्थों के ऊपर अपनी वृद्धि करते हैं तथा रोगाणुओं के विकास को प्रतिबन्धित करते हैं। इसी के साथ उनके धागे को नष्ट करने तथा उन्हें कम प्रभावी बनाने में सहायता प्रदान करते हैं तथा ये भूमि के माध्यम से होने वाले रोगों का नियन्त्रण करने में भी सहायक होते हैं।

जीवाणु खादों के विभिन्न लाभों उपरांत भी केवल जानकारी की कमी होने के कारण, किसान इन विविध जीवाणु उर्वरकों का उपयोग नही कर पाते हैं। ये सभी जीवाणु कल्चर उचित दर पर भाकृ अनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली में उपलब्ध हैं। आसपास के कृषि विज्ञान केन्द्र तथा कृषि सेवा केन्द्रों के माध्यम से भी इन सभी जीवाणु कल्चर को प्राप्त किया जा सकता है।

फैमिली नेट वेसल कम्पोस्ट तकनीक: घरेलु अपशिष्ट से मूल्यवान खाद

आशा साहू, सुदेशना भट्टाचार्य, निशा साहू, के भारती, ए बी सिंह
भाकृअनुप - भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, नबीबाग, भोपाल -462038

शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि और अधिक खाद्य की मांग के कारण भारत में शहरी ठोस अपशिष्ट के उत्पादन में वृद्धि हुई है। शहरों में इस अपशिष्ट का उत्पादन लगभग 0.17 किलोग्राम से 0.62 किलोग्राम प्रति व्यक्ति है, जिसका औसत 0.4 किलोग्राम होता है। ठोस अपशिष्ट का लगभग 40% जैव अपघटित माना जाता है, जिसमें से केवल 14% (9.1 मिलियन टन) को कंपोस्ट बनाया जाता है और 2030 तक 15 मिलियन टन तक पहुंचने का अनुमान है। बायोडिग्रेडेबल अपशिष्ट में मुख्य रूप से घरेलू गतिविधियों से निकलने वाले रसोई के कचरे होते हैं। इन घरेलू कचरों में बहुत अधिक नमी की मात्रा होती है जो अन्य कचरे के साथ मिश्रित होने पर गंध पैदा करती है और लीचेट का उत्पादन करती है। ये घरेलू कचरे

कार्बनिक स्त्रोत होते है इसमें लगभग 60% कार्बोहाइड्रेट, 20% प्रोटीन और 10% लिपिड (साहू और साथी, 2019) पाए जाते हैं। इस प्रकार, रसोई के कचरे को घरेलू स्तर पर ही अलग करने और इसे पोषक तत्वों से भरपूर खाद में बदलने के लिए एक उचित तकनीक की आवश्यकता है।

इस रसोई के कचरे को घरेलू स्तर पर पोषक तत्वों से भरपूर खाद में बदलने के लिए भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल, द्वारा विशिष्ट तकनीक विकसित की गई है जिसका नाम "फैमिली नेट वैसेल कम्पोस्टिंग (FNVC)" रखा गया है। इस तकनीक से घरेलू गीले कचरे को केंचुए (जैसे *आइसेनिया फेटिडा, यूड्रिलस यूजेनिया* और *पेरीओनीक्स एक्सकावेटस*) द्वारा मूल्यवान कम्पोस्ट में पुनर्चक्रित किया जा सकता है।

विधि: फएनवीसी तकनीक से कम्पोस्ट बनाने के लिए 90 सेमी. लम्बाई और 35 सेमी. व्यास का एक नाइलोन नेट को गोलाई में सिलकर नीचे से बांध दिया जाता है।

- इसके अंदर एक प्लास्टिक डलिया (10-15 किलोग्राम क्षमता) को रखा जाता है।
- घर से निकलने वाले गीले कचरे को छोटे-छोटे टुकड़े (3-5 सेमी लंबाई) में काटकर डलिया में भरा जाता है।
- फिर कचरे के ऊपर सड़े हुए गोबर को डाला जाता है, इसके बाद लगभग इसमें लगभग 100-150 वयस्क केंचुओं को डालकर जूट के बोरे के टुकड़े से ढक दिया जाता है।
- ऊपर से पानी का छिड़काव नियमित रूप से नमी को बरकरार रखने के लिए किया जाता है।
- इस वैसल को घर के खुले स्थान में या घर के आसपास लगे पेड़ की शाखाओं पर नायलॉन की रस्सी की मदद से लटकाया जा सकता है।

प्रभाव:

• यह तकनीक रसोई के कचरे को मूल्यवान खाद में बदलने के लिए एक सरल, कम लागत वाली और कुशल तकनीक है।

• इस खाद में 0.8-1.2% नाइट्रोजन, 1.0-2.0% फॉस्फोरस और 0.8-1.0% पोटैशियम पोषक तत्व होते हैं

•डंपिंग स्थलों पर घरेलू कचरे के संचय, दुर्गंध और ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने में मदद करती है।

• इस तकनीक को अपनाने से भारत सरकार के "स्वच्छ भारत मिशन" को स्थानीय स्तर पर मजबूती मिलेगी।

नोट:

एक परिवार (4 सदस्य) से लगभग 400 से 500 ग्राम गीला कचरा प्रतिदिन निकलता है। इस घरेलू कचरे के पूर्ण पुनः चक्रण हेतु, कुल 3 युनिट की आवश्यकता होती है ताकि यह प्रक्रिया ना टूटे। 30 दिनों के बाद मूल्यवान खाद खेत/किचन गार्डन में डालने के लिए तैयार हो जाती है।

इस तकनीक के माध्यम से रसोई के अपशिष्ट को मूल्यवान खाद बनाकर, शहरी क्षेत्रों में विशेष रूप से महिला समुदाय के बीच लोकप्रिय बनाया जा सकता है। इसे भारत के चयनित किसानों और राज्य सरकार के अधिकारियों को भी वितरित किया गया है । इस तकनीक को कृषि विज्ञान केंद्र, सुजानी,

देवघर और कृषि विज्ञान केंद्र, कोशबद हिल, पालघर, महाराष्ट्र के माध्यम से 10 गांवों के 50 किसानों को भी वितरित किया गया है । इस तकनीक को ऑनलाइन वीडियो लिंक (https://youtu.be/XihwCgvo22A,https://www.youtube.com/watch?v=q-TI3xk_90A, https://youtu.be/9yesYK8IIys) के माध्यम से भी प्रसारित किया गया है।

नीमः जैविक खेती में एक महत्वपूर्ण तत्व

डॉ दीपक कुमार जायसवाल'#, श्री गिरिराज चाड़', डॉ संजय कुमार' और डॉ जे. पी. सिंह''

'जैव विज्ञान, कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान, रसायन एवं पेट्रो–रसायन विभाग, रसायन एवं उर्वरक मंत्रालय, भारत सरकार, गुरुग्राम, हरियाणा (122 016)

''''सहायक प्राध्यापक, पादप रोग विज्ञान विभाग, श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय बलिया, उत्तर प्रदेश, (277 001)

#संवादी लेखक का ईमेल पता: deeraj3024@gmail.com

नीम हमारे देश में प्राचीन समय से ही जाना–पहचाना वृक्ष रहा **है** तथा अपने बहुउदेशीय गुणों के कारण सबको अपनी ओर आकर्षित करता है। इसकी पत्तियाँ, छाल, फूल, फल, जड़ व तना सभी का विशेष औषधीय महत्व है। आज हम अपने आस–पास मौजूद प्रकृति के श्रेष्ठ उपहार को भूल रहे हैं। हमारे नीम के पुराने पेड़ धीरे–धीरे नष्ट हो रहे हैं तथा पौधों का रोपण न के बराबर होने के कारण नीम के पौधों की संख्या में लगातार गिरावट आ रही है। वर्तमान समय में अनेक कृत्रिम व अत्यधिक जहरीले रसायनों का अंधाधुंध उपयोग करके हमने जल, जमीन, खाद्य सामग्री एवं सम्पूर्ण वातावरण को विषमय बना लिया है। परिणाम यह हुआ कि हर रोज हमें अनेक नई–नई असाध्य बीमारियों का सामना करना पड़ रहा है। इसी तरह इन कृत्रिम रसायनों के प्रभाव से मानव को रोग मुक्त करना तो दूर इनके दुष्प्रभाव से हमारा स्वास्थ्य, पर्यावरण, प्राकृतिक विरासत एवं धन की लगातार बर्बादी हो रही है।

नीम के पेड़ प्रायः सड़कों के किनारे, गांव और खेतों में लगे हुए पाए जाते हैं। सघन बढ़वार वाला यह पौधा भूमि से 30–40 फीट तक ऊँचा हो जाता है। इसकी औसत उम्र 70–135 वर्ष तक आंकी गई है। मार्च–अप्रेल माह में सफेद रंग के छोटे फूल आते हैं, जो जून से अगस्त माह तक पक कर गिरते रहते हैं, इसे निम्बोली (फल) कहते हैं। निम्बोली का गूदा स्वाद में हल्का मीठा होता है। पके फल में औसत तौर पर 23.8 प्रतिशत छिलका, 47.5 प्रतिशत गुदा, 18.6 प्रतिशत कवच व 10.1 प्रतिशत गिरी निकलती है। सामान्यतः एक क्विंटल निम्बोली से 18–20 किलोग्राम तक गिरी मिल जाती है, जिसमे 35.3 प्रतिशत तक तेल निकलता है, जो अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है।

नीम की निम्बोली का रासायनिक संगठन

नीम से लगभग 80 प्रकार के रसायन निकाले गये हैं, इनमें मुख्यतः एजेडिरेक्टिन, सेलेनिन, मेलेयान्ट्रोल, निम्बीडीन, निम्बीन, जेडुनिन आदि सक्रिय जैव यौगिक पाये जाते हैं। इसमें पाये जाने वाले जैव रसायनों का उपयोग कीटनाशक, फफूंदनाशक, कृमिनाशक एवं अन्य औषधियों के उत्पादन में मुख्य रूप से होता है।इसमें पाये जाने वाले मुख्य रसायन निम्न प्रकार हैं :–

- **एजेडिरेक्टिनः** भारतीय नीम की एक किलोग्राम गिरी में लगभग 5 ग्राम एजेडिरेक्टिन मिलता है, जो कीटों के आहार प्रक्रिया में बाधक (एंटीफीडेंट) है तथा उनका जीवन चक्र नष्ट कर देता है। बाजार में उपलब्ध दवाओं की प्रभाविता इसी तत्व के आधार पर मापते हैं। इसकी 25–50 ग्राम मात्रा एक हैक्टर क्षेत्र को कीटमुक्त रखने के लिये पर्याप्त है।
- **निम्बीडीन और निम्बिनः** बीज के गूदे में निम्बीडीन 2 प्रतिशत तक होता है। इसमें वायरस रोधक गुण होते हैं।
- **मेलेयान्ट्रोल एवं सेलेनिनः** यह अल्प मात्रा में पाये जाते हैं, जो कीटों को पत्तियाँ खाने से रोकते हैं।

नीम की लगभग 400 प्रकार के कीटों, 112 सूत्रकृमियों तथा 15 कवकों के विरूद्ध कार्य क्षमता जांची गई है। सारे विश्व में नीम के 170 से ज्यादा फार्मुलेशन उपलब्ध हैं जिसमे भारत में 30 से ज्यादा उत्पाद रजिस्टर्ड हैं। आज खेती पर बढ़ते कीटनाशकों के हानिकारक प्रभाव व आर्थिक दबाव को कम करने व पर्यावरण में संतुलन बनाये रखने हेतु जरूरी है कि अधिक से अधिक संख्या में नीम के पौधों का रोपण करें तथा घरेलू स्तर पर किसान स्वयं इसके विभिन्न कीटनाशक उत्पाद जैसे निम्बोली का चूर्ण, नीम की पत्तियों से खाद आदि तैयार करें। फसलों में इनके प्रयोग से पर्यावरण सुरक्षित रहता है तथा लाभदायक कीटों पर भी कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।

नीम से बनने वाले व्यवसायिक उत्पादः वर्तमान समय में नीम के व्यवसायिक उत्पादों में ऐजाबिन, ऐक्टिन, अचूक, ट्राईमीन, बायोनीम, निम्बिसिडिन, मल्टीनीम, रक्षक, नीमगार्ड, नीमार्क एवं रिपिलिन आदि उपलब्ध है।

नीम से बनने वाले अनेक घरेलू उत्पादः नीम के विभिन्न उत्पादों को किसान स्वयं घरेलू स्तर पर तैयार कर सकते हैं जो बहुत ही कारगर एवं प्रभावी होते हैं।

1. निम्बोली का अर्क : नीम के अच्छे प्रकार से पके पीले फलों को 2–3 दिन के लिए पुराने मटके में पानी के साथ रखते हैं, जिससे फलों के गूदे में सड़ाव पैदा हो जाता है जिससे बीज गूदे से अलग होकर मटकी के पैदे में जमा हो जाते हैं। बीजों को अच्छी प्रकार से साफ करके छाया में सुखा लेना चाहिए। अर्क के निकालने हेतु 350 ग्राम गुठली को बारीक पीसकर लगभग 10 लीटर पानी में 24 घण्टे तक भिगोते हैं। तत्पश्चात रस को अच्छी प्रकार से छान लेते हैं तथा इसका फसलों पर छिड़काव किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार 7 दिन के अन्तर पर छिड़काव को दोहराना चाहिए। इसके प्रयोग करने से पौधों पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं आता है तथा कीट पौधों से अपना भोजन लेने में असमर्थ हो जाते हैं।

2. निम्बोली का सामूहिक अर्क :

सामग्री :

नीम की गुठली 2 किलोग्राम

आक की पत्तियाँ	1 किलोग्राम
धतुरा की पत्तियाँ	1 किलोग्राम
बबूल की छाल/पत्तियाँ	1 किलोग्राम
खीप की शाखाएँ	1 किलोग्राम
छाछ	6–7 लीटर
पानी	2 लीटर

विधिः नीम की गुठली को बारीक पीसें तथा आक, धतुरा व खीप की पत्तियों व बबूल की छाल को बारीक टुकड़ों में काट लेवें, सम्पूर्ण ठोस सामग्री को पुराने बड़े मटके में डालकर मटके में 6–7 लीटर छाछ व दो लीटर पानी डालने के बाद उसका मुँह मिट्टी लगाकर अच्छी प्रकार से बन्द कर देवें तथा मटके को गोबर की खाद के ढेर में गहरा गाढ़ देवें, जहाँ लगभग 70^0 से. तापमान हो, इस मटके को करीब 20 दिन बाद बाहर निकाल कर सम्पूर्ण सामग्री को छान लेवें तथा प्राप्त अर्क की 3 लीटर मात्रा 100 लीटर पानी में मिलाकर फसलों पर छिडकाव करें। आवश्यकता होने पर 15 दिन बाद छिड़काव दोहरायें, इससे कीट पौधे से पोषण नहीं ले पाते साथ ही साथ कीट तथा अण्डों की वृद्धि व अण्डे देने की क्षमता बाधित हो जाती है। इस अर्क में बनने वाली एल्कोहल की अल्प मात्रा पौधों की बढ़वार व पुष्पन में सहयोग करती है। इस अर्क का छिड़काव पुष्पन अवस्था में भी कोई नुकसान नहीं पहुँचाता है। यह अर्क लाभकारी कीटों एवं पर्यावरण पर भी बुरा प्रभाव नहीं डालता है तथा सभी प्रकार के रस चूसने एवं कुतरने वाले कीटों के विरूद्ध कारगर है। इसका प्रयोग सभी फसलों में किया जा सकता है।

3. नीम की गुठली का चूर्णः नीम की गुठली का चूर्ण बनाने के लिए अच्छी प्रकार से साफ सूखी हुई गुठलियों को मिक्सी या खरल में डालकर बारीक पाऊडर बना लेते हैं। प्रयोग करने के लिए ताजा चूर्ण बनाना चाहिए। अनाज के भण्डारों को सुरक्षित रखने हेतु बीजों को 3 प्रतिशत की मात्रा में मिला कर भण्डारित रखा जा सकता है। बीज उपचार (दीमक नियन्त्रण) के लिए एक क्विंटल चूर्ण को एक हैक्टर क्षेत्र में बुवाई से पूर्व खेत में मिला देना चाहिए।

4. नीम की पत्तियों का अर्क : नीम की पत्तियों का अर्क फसलों पर लगने वाले कीटों को प्रतिकर्षित (रेपलेंट) करता है, जिससे फसल में कीट से होने वाली हानि कम होती है।

सामग्री :

नीम की पत्तियाँ 5 किलोग्राम

गाय का मूत्र 10 लीटर

विधिः 10 लीटर गाय के मूत्र को एक पुरानी मटकी में डालकर लगभग 5 किलोग्राम नीम की पत्तियों को बारीक काटकर मटकी में डाल देना चाहिए, मटकी के मुंह को मिट्टी द्वारा बंद करके धूप में 10 दिन के

लिए रख दिया जाता है। 10 दिन के बाद अर्क को छानकर 5 प्रतिशत घोल का फसलों पर छिड़काव किया जा सकता है। मटकी के स्थान पर ताम्रपात्र का प्रयोग ज्यादा उचित पाया गया है।

5. नीम की पत्तियों का रसः

- पाँच किलो नीम की हरी पत्तियों को मिक्सी अथवा खरल में डालकर लुग्दी बनाते हैं। लुग्दी बनाते समय इसमें लगभग 1 लीटर एसीटोन रसायन मिलाते हैं। अच्छी प्रकार से तैयार लुग्दी में 5 लीटर पानी मिलाकर हल्की आंच पर गर्म करने के बाद बारीक कपड़े से छानकर रस प्राप्त कर लेना चाहिए।इस रस की 10 प्रतिशत मात्रा का घोल बनाकर अल्प मात्रा में टिपोलिन या साबुन का घोल मिलाकर छिड़काव किया जा सकता है।
- पाँच किलोग्राम नीम की बारीक कटी हुई पत्तियों को 10 लीटर पानी में मिलाकर 12 घण्टे तक रखने के बाद रस को छान लेते हैं। इसी प्रकार तैयार रस में थोड़ी मात्रा में साबुन का पानी या टिपोलिन मिलाकर फसल पर कीट लगने से पूर्व छिड़काव करना चाहिए जिससे कीटों के अण्डे देने की क्रिया को नियन्त्रित रखा जा सकता है।

6. नीम की पत्ती का चूर्णः नीम की पत्ती को छाया में सुखाकर शुष्क स्थान पर भण्डारित रखना चाहिए। प्रयोग लेने के समय सूखी हुई पत्तियों की बारीक पिसाई कर लेनी चाहिए। नीम की पत्तियों से बने चूर्ण को 10 प्रतिशत की दर से बीजों के साथ प्रयोग करना पड़ता है। अनाज भण्डार गृहों में भी इसका प्रयोग काफी प्रभावी पाया गया है। मृदा में नीम की पत्तियों का चूर्ण 100 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के 20 दिन पूर्व प्रयोग करने से दीमक एवं सूत्रकृमि (गाढसूत्रकृमि) को नियंत्रित किया जा सकता है।

7. नीम का तेलः अच्छी प्रकार से पकी हुई निंबोली के गूदे एवं छिलके को सड़ाव विधि से साफ करके उनको छाया में फैलाकर सुखाना चाहिए व सूखते समय बीजों को भली प्रकार उथल–पुथल करते रहना चाहिए वरना बीजों पर फंफूद लग जाती है और तेल का प्रतिशत कम हो जाता है। नीम के बीजों का तेल एक्सपैलरों में कभी नहीं निकालना चाहिए क्यों कि उनमें अधिक ताप होने की वजह से नीम के बहुमूल्य औषधीय तत्व एजोडिरेक्टीन, सेलानिन, निंबिडीन आदि वाष्पीकरण द्वारा हवा में मिल जातेहैं। वैज्ञानिकों के अनुसार तेल 45^0 सेल्सियस से नीचे के तापमान तक ही अर्थात् ठंडी रीति से देशी बैल घाणी या सेन्टीफ्यूज मशीनों से ही निकालना चाहिए। भण्डारित बीजों में नीम के तेल का प्रयोग 2 प्रतिशत की दर से करना चाहिए।

8. नीम की खलीः नीम की गुठली से तेल निकालने के बाद बचे अवशेष को नीम की खली कहतें हैं। नीम की खली में भी कीटनाशी, फफूंदनाशी व सुत्रकृमिनाशी गुणों के साथ–साथ पोषक तत्वों की भरपूरमात्रा पाई जाती है। इसमें 5.22 प्रतिशत नाइट्रोजन, 1.08 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा 1.48 प्रतिशत पोटाश पाया जाता

है। नीम की खली मृदा में रहने वाली फफूंद व सूत्रकृमियों को नियंत्रित करती है। मृदा में नीम की खली 5–7 क्विन्टल मात्रा प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के 7 दिन पूर्व खेत में बिखेर कर जोत लगा देनी चाहिए।

9. नीम की पत्तियों की हरी खादः नीम की हरी पत्तियों को पर्याप्त मात्रा में इक्ट्ठा कर शाखाओं से अलग कर लेते हैं। फसल बुवाई के दो माह पूर्व खेत में बिखेर कर हैरो द्वारा जुताई लगाने से अच्छी हरी खाद तैयार होती है। खाद कटवाते समय मृदा में नमी होनी चाहिए। पत्तियों द्वारा तैयार खाद भूमि में दीमक एवं सूत्रकृमि के प्रभाव को कम कर देता है। नीम से प्राप्त उपरोक्त पदार्थ रासायनिक कीटनाशियों की अपेक्षा अधिक उपयोगी एवं सस्ता साबित हुआ है। इनकी विशेषता यह है कि प्राकृतिक वनस्पति से प्राप्त होने के कारण अपना असर दिखाकर अपने आप प्राकृतिक तथ्यों में विलिन हो जाते हैं। अतः पौधों पर छिड़कने के उपरान्त भी उपभोक्ता को हानि नहीं पहुँचाते हैं।

निष्कर्ष

नीम की पत्तियों, फलों एवं उसके सम्पूर्ण भाग में विभन्न प्रकार के रोग कीट, कृमि एवं विकारों को नष्टकरने की चमत्कारी शक्ति होती है। अतः कृषि में नीम के पेड़ का अपना विशिष्ट महत्व है।

पशु पालन की आदिम संस्कृति

डॉ विभा ठाकुर,सहायक प्रोफेसर ,कालिंदी कॉलेज ,दिल्ली विश्वविद्यालय।

पशुओं के लिए संकुचित होती चरागाह भूमि और चारें की बढ़ती कीमतें देखकर पशुपालन की व्यवस्थित आदिम परंपरा पर विचार करना जरूरी है। पशु आदिम अवस्था से ही मनुष्य का सहयात्री रहा ,कभी आखेटक के शिकार के रूप में तो कभी पोषण करने वाला पालतू पशु बनकर । आदिम मनुष्य ने पशुओं की उपयोगिता के आधार पर उसे पालतू बनाकर उनसे सहयोग लिया और उसकी सहायता से कठिन और खूंखार जानवरों का शिकार कर अपनी सुरक्षा और खाद्य संबंधी जरूरतों को पूरा किया । इस प्रकार आखेटक आदिम समाज द्वारा पाले जाने पशुओं के साथ धीरे धीरे चरवाही संस्कृति का भी विकास होने लगा । विभिन्न जलवायुविक दशा में रहने वाले लोगों ने अपनी अपनी क्षेत्रिय उपलब्धता के आधार पर पशु पालन आरंभ किया ।इस क्रम में बकरी को सबसे पहले पालतू बनाया गया । बकरी को अज भी कहा जाता है ।शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि हिरण्यगर्भ जब सृष्टि के आदि में भण् की आवाज के साथ फूटा तो उससे अज की उत्पत्ति हुई और जो रस पानी में जा मिला उससे रासभ (गधा)पैदा हुआ । गाय से पहले अज यानी बकरी को पालतू बनाया गया । इसके पर्याप्त प्रमाण हमारे प्राचीन ग्रंथों में मौजूद है । भारतीय संस्कृति में देवताओं के वाहन से लेकर पशुबलि के लिए बकरे के उपयोग की परंपरा रहीं है । इतना ही नहीं पौष्टिक दूध घी के लिए भी बकरी पालने की परंपरा थी। इस तरह पशु का अर्थ था पोषण का स्रोत अथवा पोषण देकर रखा जाने वाला जानवर । जो दक्षिण की कुछ भाषाओं में गाय के लिए रूढ़ हो गया और मृग शब्द उन जंगली जानवरों के लिए प्रयोग किया जाता था जिनका शिकार किया जा सके जो आगे चलकर हिरण के लिए प्रयोग किया जाने लगा। हिरण और पशु शब्द कृषि संस्कृति की आवश्यकता से निकले हुए शब्द हैं। हिरण कृषि के लिए शत्रु थे जो खेतो को नुकसान पहुंचाते थे जिन्हें मारना पुण्य का काम था । रामकथा में स्वर्णमृग का मिथक इसका सुंदर उदाहरण है । इसी प्रकार गोपालक जिन्हें ऋगवेद में याद्व: पशु अर्थात यादवों का पशु कहा गया है । यादववंशी कृष्ण को गायों और पाडंव पुत्र नकुल और सहदेव घोड़ों और गायों के कुशल चिकित्सक माने जाते थे। शास्त्र पुराणों मे इनका उल्लेख पशुपालन की समृद्ध परंपरा के साक्ष्य प्रस्तुत करतें हैं।

आदिम समाज में पशु और उससे प्राप्त होने वाले विभिन्न उत्पाद आहार ,वाहन आदि का मुख्य स्रोत होते थे । ज्ञात हो कि अत्याधिक शिकार के कारण जब आदिम समाज की खाद्य संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति पर संकट गहराने लगा और पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ने लगा था तब वन्य प्राणियों की जैव प्रजाति समाप्त होने के खतरे को देखकर आदिम मनुष्य ने खेती करना शुरू किया और यहीं से विकास का अगला चरण शुरू हुआ। कृषि संस्कृति के विकसित होने तक आहारसंग्रहक समुदायों और पशुचारकों को

निरंतर अपने उदरपूर्ति के लिए स्थान बदलना पड़ता था लेकिन जब आदिम समाज खेती करने लगा तब एक बड़ा समूह धीरे धीरे स्थायी रूप से गांवों में बसने लगे। कृषि के आविष्कार के बाद मनुष्य के भोजन में मांस के साथ साथ अनाज ने भी अपना स्थान बना लिया । इस प्रकार समाज कृषि और आहार संग्रहक समाज के रूप में बंटने लगा । विकास के क्रमिक सोपानों को तय करता हुआ मनुष्य खाद्य संग्रहक से पशुचारक और पशुचारक से कृषि संस्कृति में प्रवेश करते हुए धीरे धीरे नगरीकरण की ओर बढ़ने लगा । और कृषि कार्य के लाभों को देखते हुए कृषि योग्य भूमि पर कृषकों का आधिपत्य बढ़ने लगा । अन्न उपजाने वाला कृषक भौतिक सुविधाओं से संपन्न होने लगा और धीरे धीरे गांव नगरों में तबदील होने लगे । खेती करने वाला खेतों का मालिक कहलाता और अन्न के बदले धन और दूसरी वस्तुओं को सहजता से प्राप्त कर लेता जबकि पशुपालकों व चरवाहों के पास खेती की जमीन न होने के कारण अन्न और चारे के लिए उसकी निर्भरता किसानों पर बढ़ने लगी । इधर अन्न के बदले धन और दूसरी उपयोगी वस्तुओं के साथ साथ खेतों के खाद के लिए किसानों और पशुपालकों के बीच अलिखित समझौते के अधीन दोनों एक दूसरे की आवश्यकताओं का सम्मान करने लगें। आज आधुनिक तकनीकों और रासायनिक खादों के कारण खेती के लिए पशुओं की निर्भरता खत्म होने के बाद भी दूध घी,मांस,ऊन जैसी अन्य आवश्यक वस्तुओं के लिए पशुपालक समाज की अनिवार्य आवश्यकता थी लेकिन बढ़ती जनसंख्या के कारण धीरे धीरे खाली परती जमीनों पर किसानों का एकाधिकार होने के बाद पशुपालकों के समक्ष पशुओं के खाद्य संकट के कारण पशुपालन कृषि कार्यों की तुलना में महंगा व श्रमसाध्य कार्य बनता गया।

आदिम समाज में पशुपालन कृषि कर्म के समान ही लाभकारी था । माना जाता है कि बड़ी संख्या में पशुपालक हिंद,ईरानी सीमाओं को पार करके पशुओं के लिए हरित घास के मैदानों के निकट बसने लगें । 1000- 500 ईं पू सिंधु और गंगा के बीच तथा गंगा और यमुना के बीच स्थानांतरित होकर बसने वाले समुदाय ने खेतीबाड़ी का काम शुरू किया । इसलिए कृषि समुदाय का उदय मध्य गंगा के घने जंगलों से भरे अति उर्वर मैदानों में हुआ था ।

यानि 1500 से 1000 ई.पू ही आदिम समाज कृषि और पशुपालन के कार्यों से जुड़ चुका था ।स्थायी रूप से कृषि करने वाला समाज अपनी जरूरत के लिए पशुपालन भी करने लगा था। पशु न सिर्फ खाद्य पदार्थों के स्रोत थे बल्कि दुग्ध उत्पादों के भी । कृषि द्वारा आसानी से चारा उपलब्ध होने के कारण पशुपालन का विस्तार हुआ । जो स्थायी रूप से नही बसे थे वे खेती करने वालों की सहमति से अपने पशुओं के लिए चारागाह की भूमि प्राप्त करके पशुपालन का कार्य करने लगे और पशुपालक समाज जो खेती नही करता था धुमंतु के रूप में आवश्यक वस्तुओं का

व्यापार करते हुए खानाबदोश समाज कहलाने लगे । कृषक समाज में पशुओं को सम्पत्ति मानकर पशुधन के रूप में इसका विनिमय भी किया जाता था तथा धुमंतु पशुपालक समाज अपने पशुओं के लिए चारे की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर निरंतर भ्रमण करते हुए जीवनयापन करते थे। और दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं का व्यापार कृषि समाजों के साथ करते थे ।ऋतु प्रवास यानि जलवायु के अनुसार देशान्तर करने वाले पशुचारको का समूह का हर नए स्थान पर अपनी आवश्यकताओं के लिए खेती,चारे की भूमि व पानी को लेकर स्थानीय कृषि समाजों से विवाद होना स्वाभाविक था। लेकिन अद्भुत बात यह है कि तमाम संघर्षों के बाद भी कृषक समाज और पशुचारण समाज एक दूसरे के पूरक थे इसलिए दोनों समाजों का विकास स्थानीय व पर्यावरणीय अनुकुलता के आधार पर हुआ जैसे जिन स्थानों पर वर्षा अधिक होती है वहां पशुपालन की ओर ध्यान नहीं दिया गया । जल बहुल वाले स्थानों पर पशुओं के खाने योग्य घास की उपलब्धता न होने के कारण वहां चरवाह समाज की तुलना में कृषि समाज का विकास दिखाई देता है । असम ,मेघालय में बिना हल की खेती करने की परंपरा इस बात को सिद्ध करती है। पूर्वोत्तर भारत में खेती की और अधिक ध्यान दिया गया इसलिए आज भी वहां पशुपालन मांस के लिए किया जाता है ।जबकि पश्चिमी भारत में राजस्थान ,गुजरात जैसे शुष्क क्षेत्र पशुपालन के लिए उपयुक्त रहे है इसलिए यहां पशु मेलों की परंपरा चरवाह संस्कृति के अदिम प्रतीक है । भारतीय समाज में पशु पालन के अनुपम उदाहरण देखे जा सकते है ।यहां कृषि कार्य और दूध ,धी की प्राप्ति के लिए बड़ी संख्या में पशुओं को पालने की परंपरा रही है ।भारत में पशु पालन सिर्फ खाद्य आवश्यकताओं के लिए ही नहीं बल्कि अपितु अपनी सुरक्षा और मनोरंजन के लिए भी इन्हें पालने की परंपरा आदिम युग से ही देखी जा सकती है जैसे भालु ,बंदर ,हाथी ,हिरन ,तौता मैना सांप आदि । इन्हें पालने वाले अपनी अपनी विशेषज्ञता के कारण अलग अलग समूहों में बंटते चले गए जैसे गाय पालने और चराने वाले ग्वाले कहलाए ,भेड़ और बकरी पालने वाले गडरिये इसी तरह सांप पकडने वाले सपेरे और बंदर भालू रखने वाले मदारी हाथी रखने वाले महावत जैसे अलग अलग समूह पशुपालकों का विभाजन होता चला गया। पशु पालन के अतिरिक्त उनकी चिकित्सा संबंधी व्यवस्था आश्चर्यचकित करती है । संसार के इतिहास में घोड़े पर प्रथम पुस्तक शालिहोत्रसंहिता लिखने का श्रेय शालिहोत्र को जाता है जो स्वयं पशु चिकित्सक भी थे । इसी प्रकार पालकाप्य मुनि ने हस्तयायुर्वेद लिखा जिसमें हाथी के पालन पोषण व चिकित्सा का विस्तार से वर्णन किया ।- अग्नि पुराण में इन दोनों चिकित्सकों का उल्लेख आता है। अग्निदेव वशिष्ट को बताते है कि शालिहोत्र ने सुश्रुत को अश्वायुर्वेद और पाल्काप्यने अंगराज को गवायुर्वेद का उपदेश दिया - शालिहोत्र: सुश्रुताय हयायुवेर्दमुक्तवान पालकोप्योऽंगराजाय गजायुर्वेदमब्रवीत ।ऋग्वैदिक काल में पशुपालन अच्छी तरह से विकसित था और गाय (कामधेनु)

की पूजा की जाती थी और इसे मानव जाति का 'सर्वश्रेष्ठ धन' माना जाता था। वैदिक ऋषियों ने गायों के संरक्षण पर बहुत जोर दिया।ऋग्वेद मवेशियों और उनके प्रबंधन के संदर्भों से भरा पड़ा है।

प्राचीन समय में कृषि समाज और चरवाहा समाज एक दूसरे पर आश्रित समाज होकर भी स्वयं में आत्मनिर्भर समाज था ।कृषि फसलों की कटाई के बाद फसलों के ठूठो को चरने के लिए पशु चारको की जरूरत पड़ती और पशु चारको को अपने पशुओं के चारे के लिए कृषि समाजों से मेलजोल रखना उनकी जरूरत रही ।इस प्रकार दोनो की जरूरतों के विनिमय के कारण कृषि संस्कृति और चरवाहा संस्कृति आदिम समाज के विकास के महत्वपूर्ण घटक माने जातें हैं । लेकिन विकास और एकाधिकार की स्वार्थवादिता के कारण दोनों समाजो ने एक दूसरे की आवश्यकता की अवेहलना करनी शुरू की । गांव में जो परती जमीनें थीं, उन्हें चारागाह में तब्दील करने के बजाय पट्टे पर दे दिया गया। अब गांवों में सार्वजनिक जमीनें बची ही नहीं, जहां जानवरों को चराया जा सके। चारागाह खत्म हुए, तो चरवाही खत्म हो गई और उसी के साथ पशुओं को पालने की संस्कृति भी खत्म हो गई और परिणाम यह हुआ कि पशुपालक कृषि संस्कृति के विकास की दौड़ में पीछे छूटकर हाशिये पर चले गए । पशुपालक समाज में गड़रिया जिनका मुख्य व्यवसाय गाय ,भेड़ ,बकरी को पालना था, अब धीरे धीरे चारागाह की कमी के कारण अपने पारंपरिक कामों को छोड़कर दूसरें व्यवसायों से जुड़ने लगे हैं l क्षेत्रियता के आधार पर इन्हें विभिन्न नामो से जाना जाता है जैसे - पाल, बघेल, धनगर आदि । गड़रिया धनगर धनगढ़ जाति एक आदिम पशुपालक जाति है। जिसका मूल व्यवसाय भेंड़ पालन करना एवं कम्बल बुनना है । प्राचीन समय से ही यह जाति खानाबदोश की तरह भेंड़ पालन का कार्य करते थे। धीरे धीरे समय परिवर्तन के साथ- साथ गांवों नगरों में बसते चले गए। इसी प्रकार गुज्जर बकरवाल जम्मू और कश्मीर के पहाड़ों में रहने वाला पशुपालक समाज हैं। ये भेड़ बकरी पालते हैं। प्रति वर्ष जाड़े में जब पहाड़ों पर बर्फ जम जाती है तो ये लोग शिवालिक की निचली पहाड़ियों में चले जाते हैं ताकि उनके मवेशियों को चारा मिल सके। अप्रैल के महीने में जब गर्मी शुरु हो जाती है तो ये वापस ऊँचे पहाड़ों पर चले जाते हैं । हिमाचल के गद्दी जाड़े में शिवालिक के निचले इलाकों में रहते है। हिमालय में रहने वाले अन्य चरवाहे समुदायों के नाम हैं भोटिया, शेरपा और किन्नौरी भी आते है । ये चरवाहे भी जाड़े में पहाड़ों से उत्तर कर मैदानी भागों में चले जाते है ताकि उनके पशुओं को खाने के लिए चारा मिलता रहे।

मैदानी और पहाड़ी समाजों की आपसदारी एक दूसरें का संबल थी । कृषक समाज पशुपालकों के महत्व को समझते थे। महाराष्ट्र कोंकण के किसान धान की कटाई करने के बाद खेतों में फसल के ठूँठ को

चरने के लिए धनकर चरवाहों को बुलाते थे उनके पशु खेतों में बचे ठूँठ को खाकर खेत की सफाई कर देते थे और अपने गोबर से खेतों की उर्वरता को भी बढ़ा देते थे। बदले में ये चरवाहे कोंकण के किसानों से चावल भी ले लेते थे क्योंकि पठारों में चावल की सहज उपलब्धता नही होती थी।

इसी प्रकार राजस्थान के राइका और देवासी चरवाहे भेड़ और ऊँट पालते है । ऊंट के बारें में मान्यता है कि इसे सबसे बाद में पालतू जानवर बनाया गया। जबकि ऊंटगाड़ी का उल्लेख ऋग्वेद के आठवें मंडल में मिलता है। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन ऊंट्रशास्त्रम में देखा जा सकता है। रेगिस्तान का जहाज कहा जाने वाले ऊंट राइका (जिसे गुजरात में रेवारी के नाम से जाना जाता है) लोगों के लिए जीवनरेखा का काम करता हैं। जिसकी पीठ पर अपनी जरूरत का सारा समान लाटकर मीलों इस पर सवारी करते हैं हुए पूराजीवन गुजार देतें हैं। इसे राजस्थान लाने का श्रेय पाबूजी महाराज को जाता है इसलिए इन्हें ऊंटों का देवता कहा जाता है । राइका समाज के लोकदेवता अपने ऊंटों की कुशलता के लिए पाबूंजी महाराज को पूजते हैं। रेवारी और राइका समुदाय को भूगोल और मौसम का अच्छा ज्ञान होता है ।यह समुदाय मानसून के दौरान बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर और बीकानेर के गाँवों में ही रहते है क्योंकि इस समय वहाँ चारा उपलब्ध रहता है। अक्तूबर माह में पशुओं के चारे और पानी की तलाश में इन्हें भी बाहर निकलना पड़ता है । भारत में पशुपालकों के अलग अलग समुदाय विस्तृत अध्ययन का विषय हैं।

कुल मिलाकर कृषि और पशुपालक समाज एक दूसरे की आवश्यकता को पूर्ति करते हुए अपनी जीवन शैली के कारण एक दूसरे से अलग दिखते हुए भी अभिन्न समाज थे लेकिन विकास की आंधी ने एक दूसरे की अभिन्नता को एक दूसरे से अलगाव का कारण बना दिया । आज खेती बाड़ी की आधुनिक मशीनों और जैविक खाद की उपलब्धता ने पशुचारकों की उपयोगिता को समाप्त कर दिया है जिसकी वजह से चरवाहें अपने पारंपरिक कार्यों को छोड़कर दूसरे कार्यों के लिए विवश हो रहें हैं।

मानव - स्वास्थ्य और पर्यावरण पर कीटनाशकों की विषाक्तता: हरियाणा संदर्भ में

डॉ. सविता शर्मा डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश'
पता- एम. सी. कॉलोनी, लोहारू रोड़, वार्ड नं 18, चरखी दादरी, हरियाणा।

कृषि क्षेत्र के औद्योगीकरण ने प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र पर रासायनिक परत चढ़ा दी है। कीटनाशक कृषि भूमि, सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों, ग्रामीण-शहरी हरे- भरे क्षेत्रों, पेड़-पौधों और मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों को विभिन्न बीमारियों तथा संक्रमण से बचाने के लिए उपयोग किए जाने वाले रसायन हैं। हालांकि, इन कृषि रसायनों का बड़ी संख्या में प्राणी स्वास्थ्य और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पैदा करने की उनकी ज्ञात क्षमता के कारण, उनके दुष्प्रभाव एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय स्वास्थ्य जोखिम कारक हो सकते हैं। इन पारिस्थितिक दृष्टिकोण की तत्काल आवश्यकता ने कई नवीन विचारों को जन्म दिया है, उनमें कृषि सुधार और खाद्य उत्पादन, खाद्य संप्रभुता के लिए विकसित स्थायी अभ्यास को लागू करना शामिल है। वर्तमान स्थिति पहले से कहीं अधिक स्पष्ट है कि आज मानव जगत को खाद्य उत्पादन के संबंध में नई कृषि अवधारणा के कार्यान्वयन एवम उत्पादन की ओर अधिक सतर्कता से ध्यान देना होगा। जो मनुष्य अथवा प्राणी और पर्यावरण के लिए सुरक्षित वातावरण तैयार कर सके। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मनुष्य को जैविक कृषि की ओर लौटना होगा।

कीटनाशक रसायनिक पदार्थ या पदार्थों के मिश्रण होते हैं जो मुख्य रूप से कृषि में या सार्वजनिक स्वास्थ्य सुरक्षा कार्यक्रमों में उपयोग किए जाते हैं ताकि पौधों को कीटों, खरपतवारों या बीमारियों से और मनुष्य को मलेरिया, डेंगू बुखार आदि और सिस्टोसोमियासिस जैसे वेक्टर जनित रोगों से बचाया जा सके। कीटनाशक, कवकनाशी, शाकनाशी, कृंतकनाशी, और पौधों की वृद्धि नियामक विशिष्ट उदाहरण हैं। इन उत्पादों का उपयोग अन्य उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है, जैसे गैर-कृषि क्षेत्रों, सार्वजनिक शहरी हरित क्षेत्रों और खेल के मैदानों का सुधार और रख रखाव में। इसके अलावा, इन रासायनिक पदार्थों के अन्य कम ज्ञात अनुप्रयोग भी हैं, जैसे कि पालतू पशुओं में , अवांछित प्रजातियों की उपस्थिति को खत्म करने या रोकने के लिए निर्माण सामग्री।

कई कीटनाशकों को स्वास्थ्य और पर्यावरणीय मुद्दों से जोड़ा गया है और कुछ कीटनाशकों के कृषि उपयोग को छोड़ दिया गया है। कीटनाशकों के संपर्क में त्वचा, धांस या साँस लेने के संपर्क के माध्यम से हो सकता है। मानव या पशु शरीर के भीतर कीटनाशकों को शरीर में वसा में चयापचय, उत्सर्जित, संग्रहीत या जैव संचयित किया जा सकता है। इस प्रकार रासायनिक कीटनाशकों से जुड़े कई नकारात्मक स्वास्थ्य प्रभावों में शामिल हैं, अन्य प्रभावों के अलावा, त्वचाविज्ञान, जठरांत्र, तंत्रिका संबंधी, कार्सिनोजेनिक, श्वसन, प्रजनन और अंतःस्रावी प्रभाव हैं। इसके

अतिरिक्त, उच्च व्यावसायिक, आकस्मिक या जानबूझकर कीटनाशकों के संपर्क में आने से भी अस्पताल में भर्ती होने की स्थिति और मृत्यु भी हो सकती है।

कीटनाशकों के अवशेष रोज़मर्रा के खाद्य पदार्थों और पेय पदार्थों की एक बड़ी विविधता में पाए जा सकते हैं; यथा- पका हुआ भोजन, पानी, शराब, फलों के रस, जलपान और पशु आहार । यहां ध्यातव्य है कि धोने और छीलने से रसायन के अवशेषों को पूरी तरह से हटाया नहीं जा सकता । दो या दो से अधिक रासायनिक पदार्थों के एक साथ संपर्क के मामले में, जो वास्तविक जीवन की स्थितियों में होता है तो सह-क्रियात्मक प्रभाव हो सकता है। मानव स्तन के दूध के नमूनों में कीटनाशकों के अवशेषों का भी पता चला है, और बच्चों में प्रसव पूर्व जोखिम और स्वास्थ्य प्रभावों के बारे में चिंताएं हैं।

इस वर्तमान समीक्षा का उद्देश्य कृषि में एक नई अवधारणा की तत्काल आवश्यकता को उजागर करना है जिसमें रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग में कमी करना है। इस तथ्य को देखते हुए कि वर्तमान साहित्य में स्वास्थ्य एवं पर्यावरण प्रभावों पर व्यापक रूप से चर्चा करना अत्यावश्यक है। रासायनिक कीटनाशकों के सामान्य वर्गों, यानी ऑर्गेनोक्लोरीन, ऑर्गनोफॉस्फेट के संपर्क से जुडे हैं। कार्बामेट्स, पाइरेथ्रोइड्स, ट्राईज़ाइन्स और ने ओनिकोटिनोइड्स। व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले शाकनाशी "ग्लाइफोसेट" पर अधिक जोर दिया जाता है, जो एक ऑर्गनोफॉस्फेट कीटनाशक है जो वर्तमान कृषि से बहुत निकटता से संबंधित है। महत्वपूर्ण स्वास्थ्य प्रभाव, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, वैकल्पिक समाधानों को लागू करने की तत्काल आवश्यकता को प्रकट करते हैं।

कृषि योग्य भूमि के आधार पर पंजाब के बाद हरियाणा देश में सर्वाधिक कीटनाशक इस्तेमाल करने वाला राज्य बन चुका है। उत्पादन की खोज और जागरूकता की कमी से 36 लाख हेक्टेयर भूमि पर हर वर्ष की तरह इस्तेमाल 42 हजार क्विंटल तक पहुंचा गया है। पेस्टिसाइड के अंधाधुन्ध इस्तेमाल से हम भले ही अनाज का उत्पादन बढ़ाकर केंद्रीय पूल के योगदान में दूसरे नंबर पर पहुंच गए हैं लेकिन बीमारियों की फसल भी साथ में बो रहे है। तंबाकू के बाद प्रदेश में कैंसर का सबसे बड़ा कारण पेस्टिसाइड बन गया है इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च ने भी इस पर मोहर लगाई है। हरियाणा में हर साल औसतन 29261 नए कैंसर के मरीज सामने आ रहे हैं और पिछले 5 साल में ही लगभग 15000 लोगों की मौत हो चुकी है। इसके साथ हार्ट, बीपी, दमा और स्किन एलर्जी के मरीजों की संख्या भी बढ़ रही है। कीटनाशक की भारी खपत का मोटा लाभ सैकड़ों कंपनियां उठा रही हैं। इनमें कई कंपनियां घटिया किस्म का पेस्टिसाइड बेच रही हैं। सरकार की ओर से ही लिए गए नमूनों में करीब 1478 फेल हो गए हैं। ये पेस्टिसाइड सब्सटेंडर्ड और घटिया क्वालिटी के मिले। प्रदेश में ऐसी कंपनियों की भरमार है जिनके पास लैब, रिसर्च के संसाधन तक नहीं है। यह सिर्फ दूसरी कंपनियों के फार्मूले पर

कीटनाशक बना रही हैं। हरियाणा में पेस्टिसाइड का कारोबार करीब 11सौ करोड़ रुपए तक पहुंच चुका है।

30 % पेस्टिसाइड ही फसल पर बाकी हवा- मिट्टी में घुल जाता है। विशेषज्ञों का मानना है कि किसानों को जागरूक करना होगा कि कब, कैसे, कहां और कितना कीटनाशक डाला जाना चाहिए, जैसे- गन्ने की बिजाई से पहले ही खेत में कीटनाशक छिड़काव कर दिया जाता है, इसकी जरूरत ही नहीं है। किसान जब दवा का छिड़काव करता है तो केवल 30% दवा ही पौधे पर गिरती है बाकी हवा में उड़ती है या फिर मिट्टी में। कंपनियां जागरूकता की कमी का फायदा उठा रही है। वह घटिया किस्म के व नकली कीटनाशक बेच रही हैं। ये कम असरकारक होते हैं इसलिए बार-बार और ज्यादा से ज्यादा डालना पड़ता है। परिणामस्वरूप शरीर में रीसाइक्लिंग होकर यह रसायन धीरे-धीरे पहुंचते हैं और ब्लड में घुल जाते हैं। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ कैंसर प्रीवेंशन एंड रिसर्च के अनुसार हरियाणा प्रदेश में खाद्य पदार्थों के माध्यम से शरीर में रोजाना 0.5 मिलीग्राम कीटनाशक जा रहा है। राजीव गांधी कैंसर इंस्टीट्यूट एंड रिसर्च सेंटर, दिल्ली की यूनिट चीफ डॉ स्वरूपा मित्रा के अनुसार तंबाकू के बाद हरियाणा में कीटनाशक कैंसर का दूसरा बड़ा कारण बन रहा है। लगभग 30% केस इसी वजह से हो रहे हैं। डायबिटीज वी हृदय रोगियों की संख्या बढ़ने का कारण भी यही रसायन हैं। इस तरह रोहतक पीजीआई कैंसर यूनिट के विभागाध्यक्ष, अशोक चौहान बताते हैं कि कीटनाशक शरीर के जिस हिस्से से गुजरता है उस को नुकसान पहुंचाता है। जिसका कारण कैंसर के रूप में उभरता है। खासकर फेफड़े, किडनी, लीवर और गला आदि। धीरे धीरे इसकी मात्रा बढ़ने पर यह ब्लड में भी मिल जाता है और इसका कारण ब्लड कैंसर मनुष्य के जीवन का खतरा बन जाता है। कीटनाशक नर्वस सिस्टम पर भी बुरा असर डालता है, जिसके कारण मनुष्य का नर्वस सिस्टम सिकुड़ने लग जाता है। विगत 5 सालों में बढे नए रोगियों में , बड़े राज्यों से हरियाणा की तुलना करते हैं तो पाते हैं-

प्रदेश	कैंसर रोगी	आबादी
हरियाणा	87 784	2.53 करोड़
आंध्रप्रदेश	153374	8.46 करोड़
उत्तरप्रदेश	642562	19.95 करोड़
बिहार	340860	10.38 करोड़
महाराष्ट्र	350322	11.23 करोड़

इस प्रकार चिकित्सा विशेषज्ञों के अनुसार उत्तरप्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश में गुटका, तंबाकू से ज्यादा कैंसर हो रहा है तो हरियाणा में अच्छा खान -पान होने के कारण रोगी कम हैं किंतु रोगियों का दिनोंदिन बढ़ना चिंताजनक है। इन प्रदेशो में कृषि योग्य भूमि हरियाणा से ढाई गुणा ज्यादा है जबकि कीटनाशक का प्रयोग सिर्फ 25% अधिक है। हरियाणा में कीटनाशक रसायन के प्रभाव के कारण विगत पांच वर्षों में 25 हजार मौतें दर्ज हुई हैं। इस दर से हरियाणा

में कीटनाशक रसायनों के कारण प्रति वर्ष लगभग 29 हजार रोगी बढ़ रहे हैं, क्योंकि अन्य राज्यों के हिसाब से हरियाणा में कीटनाशकों का प्रयोग औसत से 3 गुणा अधिक है। जो फसलों, सब्जियों व फलों के माध्यम से कीटनाशक रिसाइकिल होकर मनुष्य के शरीर मे प्रवेश कर रहा है। यह मनुष्य के फेफड़े, किडनी, लिवर व गले को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं।

हरियाणा की पहचान सेहतमंद और ताकत देने वाले दूध -दही से है, मगर लाला लाजपत राय यूनिवर्सिटी ऑफ वेटरनरी एंड एनिमल साइंस, हिसार ने जब गली -गली में बिकने वाले दूध की जांच की तो इसकी पोल खुलकर सामने आई। जांच में दूध का दूध और पानी का पानी ही नहीं हुआ, बल्कि इसमें जहरीले अंश भी मिले हैं। ऐसे में शक्ति और पोषण का मुख्य स्रोत माना जाने वाला दूध अब मनुष्य को प्रोटीन और कैल्शियम देने की बजाय स्लो प्वाइजन दे रहा है। 2016-17 के एक सर्वे के अनुसार लुवास के वैज्ञानिकों द्वारा हरियाणा के सात शहरों रोहतक, सिरसा, हिसार, महेंद्रगढ़, जींद, अंबाला और भिवानी- चरखी दादरी में दूध बेचने वालों के दूध में 9 तरह के कीटनाशक पाए जाने का खुलासा हुआ, जिनमें ट्राईजोफोश, मोनोक्रोटोफोस, मेलाथियान, डायक्लोरवास आदि प्रमुख हैं। डॉ नरेश सत्संगी के अनुसार, 'कीटनाशक मिले दूध के लगातार सेवन से औसत आयु को घटा देता है।' इस प्रकार चिकित्सकों एवं विशेषज्ञों का मानना है कि कीटनाशक मिले दूध के लगातार सेवन करने से मनुष्य को एक नहीं, बल्कि कई प्रकार की बीमारियां अपनी चपेट में ले सकती हैं; यथा- कैंसर, किडनी, लीवर, हार्ट, ब्लड प्रेशर, पाचन प्रक्रिया का खराब होना, बार- बार पेट खराब होना और आंखों पर असर डालता आदि प्रमुख हैं। इसके अलावा इन कीटनाशकों का प्रभाव इंसानी शरीर में रोग- प्रतिरोधक क्षमता को भी कम कर देता है।

"Analysis of pesticide residue content in some seasonal fruits" शोध प्रबंध के विश्लेषण में डॉ. सविता शर्मा और शोध -निर्देशक डॉ. ललितेश कुमार ठाकुर के मार्गदर्शन में चरखी दादरी, झज्जर और गुरुग्राम जिलों से अलग- अलग किस्मों और अलग -अलग मौसम के फलों का विश्लेषण किए जाने पर उन्होंने पाया कि फलों में कीटनाशकों की मात्रा प्रचुरता में है। डॉ. सविता शर्मा द्वारा अपने अनुसंधान के दौरान कीटनाशक सूत्रीकरण प्रौद्योगिकी संस्थान(आईपीएफटी), गुरुग्राम प्रयोगशाला की विश्लेषण रिपोर्ट के अनुसार अपना शोध प्रस्तुत किया जिसकी रिपोर्ट के अनुसार ये आकंड़े सामने आए हैं-

1.मई 2015 से अक्टूबर 2016 के दौरान चरखी दादरी से एकत्रित किए गए फलों के 52 नमूनों में कीटनाशक अवशेष का विश्लेषण किया गया, जिसमें से 43 सैंपल मैं कीटनाशकों के अवशेष पाए गए और 22 सैंपल में इनकी मात्रा अधिकतम अवशेष सीमा अर्थात MRL से अधिक पाई गई। जिसका विवरण इस प्रकार है-

फरवरी, 2016 से अप्रैल, 2016 के दौरान एकत्रित किए गए केले के नमूनों में Deltamethrin-2.891, Chloropyrifos-0.540, अनार में Fluvalinate-1.644, alfa-cypermethrin-1.956,

Phosphomidon-0.5546, अंगूर में Fluvalinate- 1.5114, पपीते में Fluvalinate-3.731, Phorate-0.3020 पाया गया।

मई, 2016 से जुलाई, 2016 के दौरान एकत्रित किए गए केले के नमूनों में Deltamethrin-0.7178, alfa-cypermethrin-1.772, मौसमी में alfa-cypermethrin-1.9872, चीकू मैं alfa-cypermethrin-1.356, आम में Deltamethrin-1.143, alfa-cypermethrin-1.1344, खरबूजे में Deltamethrin-2.1560, alfa-cypermethrin-3.215 पाया गया।

अगस्त, 2016 से अक्टूबर, 2016 के दौरान चीकू में Phosphomidon-1.973, नाशपाती में Phosphomidon-3.64 पपीते में Acephate-1.1390 पाया गया।

2. मई, 2015 से जुलाई, 2016 के दौरान झज्जर जिले से एकत्रित किए गए कुल 29 नमूनों में से 27 नमूनों में कीटनाशक के अवशेष पाए गए । जिनमें से 10 नमूनों में कीटनाशक की मात्रा MRL से अधिक पाई गई। जिसका विवरण इस प्रकार है-

मई, 2015 से जुलाई, 2015 के दौरान लीची में Profenos-1.8.98 पाया गया।

नवंबर, 2015 से जनवरी, 2016 के दौरान मौसमी में Fluvalinate-3.535, किन्नू में Cholrofenvifos-0.543 पाया गया।

फरवरी, 2016 से अप्रैल, 2016 के दौरान अंगूर में Fluvalinate-5.8733, alfa-cypermethrin-1.245, संतरे में Fluvalinate-0.8076 पाया गया।

मई, 2016 से जुलाई, 2016 के दौरान चीकू में Phosphomidon-1.973, पपीते में Acephate-1.1390 पाया गया।

2.मई, 2015 से दिसंबर, 2016 क दौरान गुरुग्राम से एकत्रित किए गए कुल 55 नमूनों में से 39 नमूनों में कीटनाशक के अवशेष पाए गए । जिसमें से 25 नमूनों में अवशेष की मात्रा MRL से अधिक पाई गई। विवरण इस प्रकार है-

नवंबर, 2015 से जनवरी, 2016 के दौरान अनार में Fenvalerate-0.7591 पाया गया।

फरवरी, 2016 से अप्रैल, 2016 के दौरान सेब में Fenvalerate-0.8018, Fluvalinate-1.113, संतरे में Aldrin-0.457, अंगूर में Fluvalinate-6.477, Bifenthrin-1.563, चीकू में Phosphomidon-0.4045 पाया गया।

मई, 2016 से जुलाई, 2016 के दौरान आम में alfa-cypermethrin-0.934, Deltamethrin-2.372, सेब में alfa-cypermethri-1.799, अनार में alfa-cypermethrin-2.078, Deltamethrin-5.859 पाया गया ।

नवंबर, 2016 से दिसंबर, 2016 के दौरान कीनू में Phosphomidon-1.8119, अमरूद में Phosphomidon-1.452, बब्बूगोशा में Phosphomidon-1.283, अनार में Phosphomidon-1.584, संतरे में Profenfos-0.524, Phosphomidon-0.329 पाया गया।

इस शोध के नतीजों के अनुसार लगभग 80.147% नमूनों में कीटनाशकों के अवशेष पाए गए और जिसमें से 41.91% नमूने MRL से अधिक पाए गए।

निष्कर्ष: आज कीटनाशकों के अवशेष मनुष्य के वातावरण तथा रोज़मर्रा के खाद्य और पेय पदार्थों में बड़ी मात्रा में पाए जा रहे हैं, उदाहरण के लिए पका हुआ भोजन, कच्ची व पकी हुई सब्जियां, पानी, दूध, शराब, फलों के रस, जलपान और पशु -पक्षी व अन्य जीव -जंतुओं के आहार आदि में। जनसाधारण में खाद्य सुरक्षा के प्रति जागरूक करने की अति आवश्यकता है। इसके साथ ही फलों और अन्य खाद्य पदार्थों में कीटनाशकों के अवशेषों के लगातार विश्लेषण की आवश्यकता है ताकि लोगों के स्वास्थ्य का ध्यान रखा जा सके। किसानों और उपभोक्ताओं को कीटनाशक अवशेषों के दुष्प्रभाव के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। सरकार को कीटनाशक अवशेषों के निरंतर विश्लेषण को बढ़ावा देना चाहिए ताकि पर्यावरण और लोगों के स्वास्थ्य की देखभाल की जा सके। इसके साथ ही रसायनिक कीटनाशकों के विकल्पों के उपयोग पर जोर देने और जैविक कीटनाशकों के उपयोग को बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है।

पता- एम. सी. कॉलोनी, लोहारू रोड़, वार्ड नं 18, चरखी दादरी, हरियाणा।

मधुमक्खी की जातियां

डा. भरतसिंह,– विशेषज्ञ एंव कीट वैज्ञानिक कृषि विज्ञान केन्द्र गुरूग्राम, **(हरियाणा)**

भारतवर्ष में मधुमक्खियों की चार जातियां पाई जाती हैं जिनसे शहद प्राप्त होता है।

1. छोटी मधुमक्खी (एपिस फ्लोरिया)

इसे छोटी मक्खी या लडडू मक्खी भी कहा जाता है। क्योंकि इसके शरीर का आकार बाकी तीन प्रकार की मधुमक्खिों से छोटा होता है। ये मक्खी अपना एक ही छत्ता जिसका आकार, हाथ की हथेली से लेकर खाने की बड़ी प्लेट के बराबर हो सकता है, खुले वायुमंडल में छोटे–छोटे पेड़ो, झाडियों व बाड़ों में बनाती है। ये मक्खी छोटे आकार के फूलों से शहद बनाती हैं इनका शहद, औषधि के रूप में अच्छा माना जाता है। साल में 1–1) किलोग्राम शहद उत्पादन करने की क्षमता होती है तथा परागण क्रिया में सक्रिय योगदान देती है।

2. डूमना, भौंवर या जगंली मधुमक्खी (एपिस डारसेटा)

इसका आकार शेष मधुमक्खियों से बड़ा होता है। यह छत्ता, चट्टानों, ऊँचे पेड़ो की टहनियों तथा बड़ी बड़ी इमारतों पर बनती है। इसका एक छत्ता होता है जो कई बार आधे से एक मीटर चौड़ा तथा डेढ़ से दो मीटर तक लम्बा भी हो सकता है। मधुमक्खी के नर एव कमेरी एक ही किस्म के प्रकोष्ठ में पाये जाते है, परन्तु रानी मक्खी का प्रकोष्ठ अलग होता है। इस मधुमक्खी की शहद पैदा करने की क्षमता 40–50 किलोग्राम तक आंकी गई है। यह क्रोधी स्वभाव की है और क्रोधित होने पर मनुष्य का दूर तक पीछा करती है तथा झुण्ड का झुण्ड टूट पड़ता है और कई बार काटने पर लोगों की मृत्यु भी हो जाती है, इसलिए इसे बक्से में डालकर पालना असंभव होता है।

3. पहाड़ी या देशी मधुमक्खी (एपिस इण्डिका)

यह मधुमक्खी कई बराबर बक्सों में अन्धेरी जगह वाले वृक्षों के खोखले तने, दीमक के खोखले टीलें, खोखली दीवारे, पहाड़ों में, खोखली जगहों, लकड़ी के बक्से, तेल के पीपे, मिट्टी के घड़े एवं तन्दूर आदि में अपने घर बानाती है। नखटू, कमेरी व रानी मक्खी अलग खानों में पाली जाती है एक कुटुम्ब में कमेरी की संख्या 25 हजार तक हो सकती है। ये मधुमक्यिां बहुत परिश्रमी होती है तथा काफी शहद एकत्र करती है और फूलों की परागण क्रिया में बहुत लाभदायक हैं। इस मक्खी के कुटम्ब से साल में 2–5 किलाग्राम शहद का उत्पादन हो जाता है। यह मधुमक्खी व्यपारिक तौर पर आधुनिक तरीके से बक्से में डालकर, शहद पैदा करने के लिए ऊँचे पहाडी उपजाऊ इलाके के लिए बहुत अनुकूल एवं लाभप्रद है।

4. विदेशी मधुमक्खी (एपिस मेलीफेरा)

आदतों में यह देशी मधुमक्खी से मिलती जुलती है, परन्तु इसका आकार देशी मधुमक्खी से बड़ा होता है और एक कुटुम्ब में कमेरियों की संख्या 1 लाख तक भी हो सकती है। विदेशों में एक कुटुम्ब से 40—50 किलोग्राम तक शहद का उत्पादन हो जाता है। भारतवर्ष में सबसे पहले यह मधुमक्खी हिमाचल प्रदेश के नगरोटा मधुमक्खी पालन केन्द्र में स्थापित की गई उसके पश्चात 1970—71 में पंजाब कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना द्वारा स्थापित की गई। अब इस मधुमक्खी को उत्तरप्रदेश हरियाणा, जम्मू कश्मीर, मध्यप्रदेश एवं अन्य प्रदेशों में फूलों की प्रचुरता के आधार पर पाला जा रहा है। इसमें एक बक्से से 10 किलोग्राम तक शहद मिलता है परन्तु साल भर फूलों की उपलब्धता स्थानान्तरण द्वारा की जाय तो 40—50 किलोग्राम शहद प्रति बक्सा मिल जाता है। यह मधुमक्खी मैदानी क्षेत्रों के लिए व्यापारिक स्तर पर आधुनिक तरीके से बक्सों में डालकर शहद पैदा करने के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई है।

समय की मांग है कीटनाशकों का संतुलित इस्तेमाल

सुदीप मिश्रा, वैज्ञानिक (विश्लेषणात्मक)
कीटनाशक सूत्रीकरण संस्थान, रसायन एवं पेट्रो रसायन विभाग
रसायन एवं उर्वरक मंत्रालय, सैक्टर -20,उद्योग विहार
गुरुग्राम-122 016 (हरियाणा)

देश की निरंतर बढती हुई आबादी के लिए खाद्यान्न की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कृषि उत्पादन एवं पौध संरक्षण तकनीक की अहम् भूमिका है अधिक कृषि उत्पादन एवं नाशी जीवों से बचाव के लिए कृषि रसायनों कीटनाशीए कवक नाशी शाकनाशी आदि का प्रयोग जरुरी होता जा रहा हैए लेकिन उपरोक्त के असंतुलिन एवं अव्यवहारिक प्रयोगों के गंभीर दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं जैसे पर्यावरण पर दुष्परिणाम जल पर दुष्परिणाम पौधों पर दुष्परिणाम एवं जीवों पर दुष्परिणाम आदि प्रकार परिणाम सामने आते हैंण

देश की निरंतर बढती हुई आबादी के लिए खाद्यान्न की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कृषि उत्पादन एवं पौध संरक्षण तकनीक की अहम् भूमिका है अधिक कृषि उत्पादन एवं नाशी जीवों से बचाव के लिए कृषि रसायनों कीटनाशीए कवक नाशी शाकनाशी आदि का प्रयोग जरुरी होता जा रहा है लेकिन उपरोक्त के असंतुलिन एवं अव्यवहारिक प्रयोगों के गंभीर दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं जैसे पर्यावरण पर दुष्परिणाम जल पर दुष्परिणाम पौधों पर दुष्परिणाम एवं जीवों पर दुष्परिणाम आदि प्रकार परिणाम सामने आते हैं

परोक्त हानिकारक प्रभावों को देखते हुए आज कृषि उत्पादन बढ़ाने के साथ साथ पेस्टीसाइड के सुरक्षित व विवेकपूर्ण प्रयोग की आवश्यकता है जिससे पर्यावरण और जीवों के स्वस्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव लक्षित न हो सके आइये जानते हैं अपने इस लेख में पेस्टीसाइडस के सुरक्षित व विवेकपूर्ण उपयोग के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए

पेस्टीसाइडस खरीदते समय

- वैधानिक पंजीकरण क्रय केंद्र से ही क्रय करें
- पाकिंग पर बैच नंबरए लेवल अदि मानकों का ध्यान रखें
- कृषि विशेषज्ञों की सलाह के बिना ही क्रय न करें
- अपंजीकृत केन्द्रों से ने लें
- समस्त मौसम के लिए थोक में क्रय न करें
- खुले पैकेट क्रय न करें

भंडारण के समय

- अलग. अलग रसायनों अलग लाग रूप में रखें
- बच्चोंए जानवरों की पहुँच से दूर रखें
- सधी धुप व वर्षा से बचाव करें
- घर और बच्चों के आसपास संग्रहण न करें
- कीटनाशी और शाकनाशी का संग्रहण एक साथ न करें
- मूल पैकिंग से खोल कर न रखें

स्प्रे हेतु घोल बनाने के समय

- संस्तुत मात्रा और संस्तुत विधि के अनुरूप ही घोल बनाएं
- ग्लब्सए मास्कए आदि रक्षात्मक साधनों का ही प्रयोग करें
- दानेदार रसायनों का प्रयोग सीधे करें
- साफ़ पानी का प्रयोग करें
- रसायनों को मिलाकर घोल न बनाएं
- स्प्रे घोल का इस्तेमाल 24 घंटे के बाद न करें
- एक ही कीटनाशक का चयन बार बार न करें

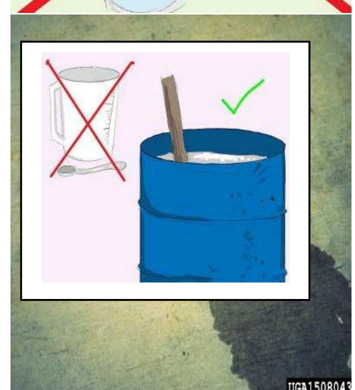

स्प्रे यंत्रों का चुनाव करते समय

- उपयुक्त यंत्रों का चयन करें
- उपयुक्त आकार के नोजल का प्रयोग करें
- कीटनाशी और शाकनाशी हेतु अलग अलग स्प्रे का प्रयोग करें

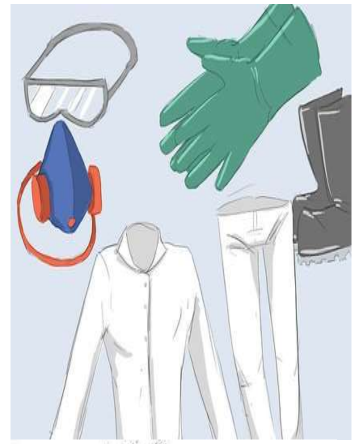

- छतिग्रस्त स्प्रे का चयन न करें
- मूह से नोजल को न खोले और न ही साफ करें

स्प्रे करते समय सावधानियां

- स्प्रे को शाम के समय में ही करें
- स्प्रे करते समय हाथ में ग्लब्सए मास्क आदि चीजों को पहन कर रखें
- वायु की गति के अनुरूप ही स्प्रे करें
- स्प्रे करने से पहले पौधों में लगे फल और सब्जियों को तोड़ लेंण

- अधिक धुप और बादलों के समय न करें
- फूल की अवस्था में में सप्री न करें
- स्प्रे के समय तम्बाकू, धूम्रपान अदि का सेवन न करें.

स्प्रे के बाद सावधानियां

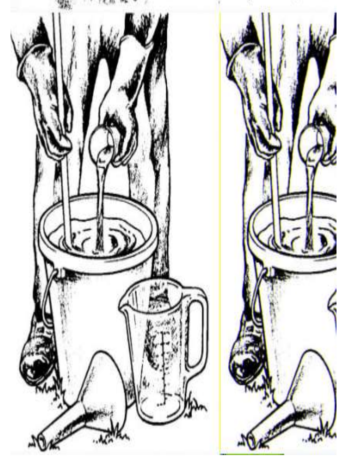

- बचे हुए घोल को बंजर जगह में बर्बाद न करें
- प्रयोगों में लिए गए कंटेनर पैकिंग को नष्ट करें
- स्प्रे के एक सप्ताह बाद ही उत्पादों की तुडाई करें
- सपर्य के बाद हाथ और मूह को अच्छी तरह साफ़ करें
- बचे हुए घोल और सामग्री को मिटटी में न मिलाएं
- बचे हुए घोल का दोबारा प्रयोग न करें
- स्प्रे के पश्चात नहाने सफाई से पूर्व कोई पेय या खाने की चीजों का प्रयोग न करें

<u>कृषि अपशिष्ट व उनका प्रबंधन</u>

विवेक सक्सेना

भारत सरकार के नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में कृषि और कृषि से संबंधित उद्योगों से हर साल 500 टन कचरा उत्पन्न होता है। इस कचरे का अधिकांश भाग जला दिया जाता है, जो वायु प्रदूषण और भूमि प्रदूषण का कारण बनता है। लेकिन अगर इस कचरे का इस्तेमाल सही तरीके से सही जगह पर किया जाए तो हम प्रदूषण को रोक सकते हैं और अधिक टिकाऊ जीवन शैली की ओर बढ़ सकते हैं।

जब किसान फसलों को उगाने के लिए बहुत सारे रसायनों का उपयोग करते हैं, तो पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि ये रसायन खाद, कीटनाशक और कवकनाशी जैसी चीजें बनाते हैं। ये रसायन तब पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं, जिससे पौधों और जानवरों का जीवित रहना मुश्किल हो जाता है लेकिन विगत कुछ वर्षों से हरित क्रांति आरम्भ हुआ , जिससे हमने अनाज का कटोरा भरा पाया । हम न केवल अपना पेट भरने में सक्षम रहे , अपितु हमने दुसरो को भी अनाज की सहायता की । असल में हरित क्रांति ने हमे खेती करने की नई विधि के साथ रासायनिक उर्वरक का उपयोग करने का तरीका भी बतलाया । हमने रासायनिक उर्वरकों को इस कदर अपनाया , जिसने हमारे कृषि भूमि के साथ - साथ हमे भी झंझोर कर रख दिया । हमारे जमीन बंजर होने लगे , भूमि की उर्वरता खोने लगी । रासायनिक उर्वरक ने हमारे शरीर के लिए विष का काम किया । रासायनिक अपशिष्ट केवल हमारे शरीर ही नही अपितु सम्पूर्ण वातावरण को प्रभावित किया ।
कई पशु - पक्षी विलुप्त होने लगे । जलीय जीवों पर भी बुरा असर पड़ा , डॉलफिन जैसे कई जीव विलुप्त हो रहे हैं।

कुछ लोग सोचते हैं कि कृषि अपशिष्ट का उपयोग केवल खाद बनाने के लिए किया जा सकता है, लेकिन यह सच नहीं है। कृषि अपशिष्ट का उपयोग कपड़ा बनाने के लिए भी किया जा सकता है, जो कि एक प्रकार का वस्त्र है। बहुत सारी कंपनियाँ और स्टार्टअप हैं जो अभी ऐसा कर रहे हैं, और यह पर्यावरण की मदद करने का एक बहुत अच्छा तरीका है।कृषि अपशिष्ट के प्रबंधन के लिए उर्वरक, कीटनाशक और कवकनाशी का उपयोग किया जाता है। उनका सही मात्रा में उपयोग

करना और यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि रसायनों का उपयोग कम से कम किया जाए। इसके अतिरिक्त कृषि अपशिष्ट के प्रबंधन के लिए रासायनिक पदार्थों को छोड़कर गोबर की खाद बनाने के साथ-साथ घरेलू उपचारों का उपयोग करना भी महत्वपूर्ण है।

खैर , हमारे कृषि विशेषज्ञ कई सारे शोध कर रहें है। उन्होंने वार्मिंग कम्पोस्ट को ही सर्वोत्तम विधि बताया । कृषकों को अपने जमीन के भूमि की जांच करवा कर खेती हेतु खाद का उपयोग करना चाहिए । जहाँ तक हो सके प्राकृतिक खाद का उपयोग करना चाहिए , तब ही हमारा कृषि और हमारा स्वास्थ्य दोनो पर्यावरण के अनुकूल रहेगा ।

ऊंची है जिसकी शान, ईश्वर भी करता है जिसका गुणगान, वही है मेरे देश का किसान!

सोयाबीन

विनीत कुमार पाण्डेय (जूनियर रिसर्च फ़ेलो – पीसीआईएमएवंएच गाज़ियाबाद)

सोयाबीन की फसल खरीफ फसल है इसे गरिकालिया, भटमास और रामकुलथी के नाम से भी जाना जाता है। इसका वानस्पतिक नाम ग्लाईसीन मैक्स है। यह उत्तरी अमेरिका, ब्राजील, आर्जेंटीना और चीन जैसे अन्य क्षेत्रों में भी उगाया जाता है। हमारे देश मे सोयाबीन की खेती प्राचीनकाल से होती आयी है। सोयाबीन की खेती मे भारत विश्व मे चौथे स्थान पर है। मध्यप्रदेश मे सोयाबीन की खेती काफी प्रचलित है, इसीलिए मध्यप्रदेश को सोया प्रदेश भी कहा जाता है। मध्यप्रदेश के 135 लाख एकड़ भूमि पर सोयाबीन की खेती की जाती है जो कि मध्यप्रदेश के किसानों के लिए पिछले 20 से 25 सालों से जीवनदायनी बनी हुई है। मध्यप्रदेश मे सोयाबीन की कुछ प्रमुख किस्मों अहिल्या–1, अहिल्या-2, अहिल्या-3, अहिल्या-4, प्रभानी सोना , प्रतिष्ठा, कालीतूर और शक्ति की खेती बहुतायत मात्रा मे होती है। यह एक दलहनी फसल है, जिसमे में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट्स, विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सिडेंट्स की भरपूर मात्रा होती है। जिसमे 40 प्रतिशत प्रोटीन और 20 प्रतिशत तेल की मात्रा होती है। इसे विभिन्न भोजन उत्पादों में उपयोग किया जाता है, जैसे कि सोयाबीन का तेल, सोयाबीन के फली, सोयाबीन के दाने और सोयाबीन का दूध और सोयाचाप। आधुनिक शोध में पाया गया है कि, सोयाबीन कुछ चिकित्सीय लाभ भी प्रदान करता है जैसे कि रक्त चाप को नियंत्रित करना, हृदय स्वास्थ्य को सुधारना, और कैंसर के खतरे को कम करना। शायद यही वजह है कि सोयाबीन का उत्पादन लगातार बढ़ता जा रहा है और सोयाबीन के तेल की खपत मूँगफली एवं सरसों के तेल के पश्चात सबसे अधिक होने लगा है।

<u>सोयाबीन की खेती मे कीटनाशकों का उपयोग</u>

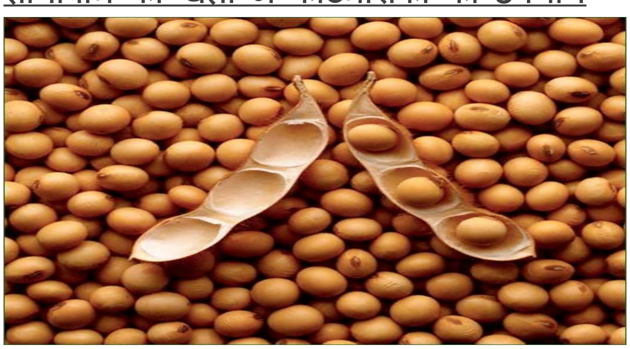

सोयाबीन के बीज

फसलों को कीट संक्रमण और बीमारी से बचाने के लिए सोयाबीन की खेती में अक्सर कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। हालांकि, कीटनाशकों के उपयोग से पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ सकता है।

सोयाबीन की खेती करने वाले किसान आमतौर पर सोयाबीन एफिड्स, बीन लीफ बीटल और बदबूदार सब्जियों जैसे कीटों को नियंत्रित करने के लिए कीटनाशकों का उपयोग करते हैं। इन रसायनों को विभिन्न तरीकों से पौधों पर लागू किया जा सकता है, जिसमें स्प्रे या बीज उपचार शामिल हैं

कीटनाशकों के अलावा, किसान कवक रोगों को अपनी फसलों को नुकसान पहुंचाने से रोकने के लिए कवकनाशी का भी उपयोग कर सकते हैं। कवकनाशी को सीधे पौधों पर या सिंचाई प्रणालियों के माध्यम से लागू किया जा सकता है। जबकि कीटनाशक सोयाबीन फसलों की रक्षा में प्रभावी हो सकते हैं, उनके नकारात्मक परिणाम भी हो सकते हैं, जैसे कि कई बार कीटनाशक लाभकारी कीड़ों और परागणकों को नुकसान पहुंचा सकते हैं, पारिस्थितिक तंत्र को बाधित कर सकते हैं, और जल स्रोतों को दूषित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, इन रसायनों के संपर्क में आने वाले किसानों और अन्य व्यक्तियों के लिए कीटनाशकों के संपर्क में आने के संभावित स्वास्थ्य प्रभावों के बारे में चिंताएं हैं।

पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर कीटनाशकों के नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिए, किसान एकीकृत कीट प्रबंधन प्रथाओं को अपना सकते हैं। इस दृष्टिकोण में जैविक नियंत्रण, फसल रोटेशन और कीटनाशक अनुप्रयोगों के सावधानीपूर्वक चयन और समय सहित तरीकों का एक संयोजन शामिल है। एकीकृत कीट प्रबंधन का उपयोग करके, किसान कीटनाशकों पर अपनी निर्भरता को कम कर सकते हैं और उनके उपयोग से जुड़े जोखिमों को कम कर सकते हैं। एकीकृत कीट प्रबंधन और अन्य टिकाऊ प्रथाओं का उपयोग करके, किसान पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव को कम करते हुए अपनी फसलों की रक्षा कर सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन खेती के लिए बड़ी चुनौती

पूर्णिमा
इंस्टिट्यूट ऑफ़ पेस्टिसाइड फार्मूलेशन टेक्नोलॉजी
गुरुग्राम हरियाणा

आज विश्व के अधिकांश लोगों ने किसी न किसी रूप में जलवायु परिवर्तन का अनुभव किया होगा। जलवायु परिवर्तन सभी के लिए समस्याएँ पैदा कर सकता है, लेकिन यह किसानों के लिए विशेष रूप से हानिकारक हो सकता है। जलवायु परिवर्तन प्राकृतिक परिवर्तनशीलता के कारण चाहे या मानव गतिविधि का एक परिणाम के रूप में समय पर जलवायु में कोई परिवर्तन करने के लिए, संदर्भित करता है। हमारी जलवायु के दिन - ब - दिन बदल रही है और इन परिवर्तनों के दो मुख्य कारण हैं, और सबसे पहले ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के लिए माहौल, जीवाश्म ईंधन और कृषि संबंधी गतिविधियों के जल के रूप में मानव गतिविधियों के हस्तक्षेप के कारण की वजह से कर रहे हैं। विश्व में भूमि का मुख्य उपयोग फसलों का उत्पादन करना है। फसल की वृद्धि धूप, तापमान और वर्षा की मात्रा से प्रभावित होती है। सूखे और बाढ़ जैसे चरम मौसम से भी फसलों को नुकसान हो सकता है।

गेहूं और मक्के की उत्पादकता पर भी प्रभाव

2014 की रिपोर्ट इस बारे में बात करती है कि भारत के विभिन्न हिस्सों में जलवायु परिवर्तन के अलग-अलग प्रभाव कैसे होंगे। उदाहरण के लिए, यह लोगों के लिए उष्ण कटिबंध में गेहूं और मक्का जैसी फसलें उगाना कठिन बना देगा, लेकिन अधिक समशीतोष्ण क्षेत्रों में फसलों पर इसका नकारात्मक प्रभाव भी पड़ सकता है। जब चावल के उत्पादन की बात आती है तो रात का तापमान दिन के तापमान से अधिक महत्वपूर्ण होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि खड़ी फसलों को कीटों और बीमारियों से प्रभावित होने की संभावना अधिक होती है और इससे भारी नुकसान हो सकता है।

देश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

वर्ष 2018 में हुए आईएमडी के अध्ययनकर्ता चेतावनी देते हैं कि भारतीय क्षेत्र में जलवायु में परिवर्तन, विशेष रूप से दक्षिण पश्चिमी मानसून के दौरान, कृषि उत्पादन, जल संसाधन प्रबंधन और देश की अर्थव्यवस्था पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए फसल उत्पादन और पशुधन उत्पादन बढ़ाने के तरीकों पर काम कर रही है। वे फसलों और पशुओं के लिए

प्रबंधन तकनीकों में सुधार करने और किसानों को मौसम में बदलाव के अनुकूल बनाने में मदद करने पर भी काम कर रहे हैं।

जलवायु परिवर्तन का पशुओं पर प्रभाव

फसलों और पेड़-पौंधो के साथ जानवरों पर भी जलवायु परिवर्तन का असर दिखेगा। सम्भावित प्रभाव इस प्रकार हो सकते हैं :

तापमान बढ़ोत्तरी का जानवरों के दुग्ध उत्पादन व प्रजनन क्षमता पर सीधा असर पड़ेगा। अनुमान लगाया जाता है कि तापमान वृद्धि से दुग्ध उत्पादन में सन् 2020 तक 1.6 करोड़ टन तथा 2050 तक 15 करोड़ टन तक गिरावट आ सकती है। सबसे अधिक गिरावट संकर नस्ल की गायों में (0.63 प्रतिशत), भैसों में (0.50 प्रतिशत) और देसी नस्लों में (0.40 प्रतिशत) होगी।

जलवायु परिवर्तन का जल संसाधन पर प्रभाव

पृथ्वी पर वर्तमान में लगभग 1400 मिलियन क्यूबिक मीटर पानी है। इसका 97% खारा पानी है, जो महासागरों में है। इंसान के हिस्से में सिर्फ 136,000 क्यूबिक मीटर पानी बचा है। पानी तीन रूपों में पाया जाता है: तरल, जो समुद्रों, नदियों, तालाबों और भूमिगत जल में होता है, ठोस, जो बर्फ और गैस के रूप में होता है, और वाष्प, जो वायुमंडल में गैस के रूप में होता है। यह अनुमान लगाया गया है कि अगर ठीक से प्रबंधन किया जाए तो 40 से 50% पानी बचाया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन के कृषि पर प्रभाव को कम कैसे किया जाए?

- वर्षा जल के उचित प्रबंधन द्वारा- तापमान वृद्धि के साथ फसलों में सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ती है। ऐसे में जमीन का संरक्षण व वर्षा जल को एकत्रित करके सिंचाई हेतु प्रयोग में लाना एक सहयोगी एवं उपयोगी कदम हो सकता है। वाटर शेड प्रबंधन के माध्यम से हम वर्षा जल को सिंचित कर सिंचाई के रूप मे प्रयोग कर सकते है इससे हमें जहां एक ओर हमे सिंचाई की सुविधा मिलेगी। वहीं दूसरी और भू-जल पुर्नभरण में भी मदद मिलती है।
- जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए हमें फसलों के उत्पादन के तरीकों में बदलाव करना होगा। हम नई तकनीकों का उपयोग करके ऐसा कर सकते हैं, जैसे विभिन्न फसलों को मिलाना और उन्हें अलग-अलग तरीकों से उगाना और पानी का संरक्षण करना। हम उन बीमा कार्यक्रमों का भी लाभ उठा सकते हैं जो छोटे किसानों को उनकी जरूरत की फसलें प्राप्त करने में मदद करते हैं।
- जैविक खेती पारंपरिक खेती से अलग है क्योंकि इसमें रसायनों और कीटनाशकों का कम इस्तेमाल होता है। जैविक खेती में, फसलें एक-दूसरे के करीब बढ़ती हैं, इसलिए यदि एक फसल प्रकोप से प्रभावित हो

जाती है, तो किसान अभी भी आसपास की अन्य फसलों से फसल काट सकता है। इसके विपरीत, पारंपरिक खेती में बहुत सारे रसायनों और कीटनाशकों का उपयोग होता है, जो मिट्टी को नुकसान पहुंचा सकते हैं और हानिकारक उत्सर्जन को जन्म दे सकते हैं। इसका अर्थ है कि हमें बीमारी के जोखिम को कम करने के लिए जैविक कृषि तकनीकों पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर

सीएस तीन चुनौतियों का समाधान करने की कोशिश करता है: उत्पादकता और आय में वृद्धि, जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होना और जलवायु परिवर्तन को कम करने में योगदान देना। ऐसा करने के लिए, हमें खेतों पर उपयोग की जाने वाली चीज़ों के साथ अधिक कुशल होने की आवश्यकता है। ऐसा करने का एक तरीका सूक्ष्म सिंचाई का उपयोग करना है, जो कि जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने के कारण अधिक लोकप्रिय हो रहा है। हमें एक नीतिगत वातावरण बनाने की भी आवश्यकता है जो स्थानीय और राष्ट्रीय संस्थानों को मजबूत करे। सीएस विधियों को अपनाने के लिए किसानों को उनके स्थान के आधार पर तकनीकी और वित्तीय सहायता प्रदान करने की आवश्यकता है। इनमें प्रमुख हैं जीरो बजट खेती और परम्परागत कृषि विकास योजना, जिन्हें आज भारत में तेजी से बढ़ावा दिया जा रहा है। ये एकीकृत कृषि प्रणालियां हैं जो कम रसायनों और कीटनाशकों का उपयोग करती हैं, अधिक टिकाऊ होती हैं, और जलवायु परिवर्तन का सामना करने और जलवायु परिवर्तन को कम करने के लिए खेतों की क्षमता बढ़ाने में अधिक प्रभावी होती हैं।

*****